संवादसेतु

मीडिया का आत्मावलोकन

अंक 15 पृष्ठ 18 जुलाई 2015 नई दिल्ली

आवरण कथा

निशाने पर ब्लॉगर

परिप्रेक्ष्य

बीबीसी के मायने

साक्षात्कार

– जगदीश उपासने

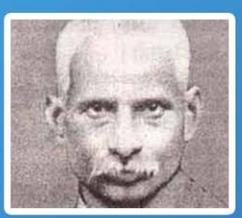

कर्मयोगी पत्रकारः माधवराव सप्रे

संपादकीय

संपादक

आशुतोष

सह-संपादक

जयप्रकाश सिंह

उपसंपादक

अवनीश सिंह राजपूत

सूर्यप्रकाश

चंदन आनंद

आर.एस. भड़वाल

कार्यालय

प्रेरणा, सी- 56/20

सेटर-62, नोएडा, उ. प्र.

फोन नं. 0120-2400335

ई-मेलः

permanoida6@gmail.com

वेबसाइट

www:samvadsetu.org

अनुरोध

संवादसेतु की इस पहल पर आपकी टिप्पणी एवं सुझावों का स्वागत है। अपनी टिप्पणी एवं सुझाव कृपया उपरोत ई-मेल पर अवश्य भेजे।

'संवादसेतु' मीडिया सरोकारों से जुड़े पत्रकारों की रचनात्मक पहल है। 'संवादसेतु' अपने लेखकों तथा विषय की स्पष्टता के लिए इंटरनेट से ली गई सामग्री के रचनाकारों का भी आभार व्यत करता है। इसमें सभी पद अवैतनिक हैं।

अनुक्रम

आवरण कथा

निशाने पर ब्लॉगर (पृष्ठ 4-5-6)

परिप्रेक्ष्य

बीबीसी के मायने (पृष्ठ 7-8-9-10)

साक्षात्कार

(पृष्ठ 11-12-13)

दूरदर्शन

दर्शकों से दूर दूरदर्शन

(पृष्ठ 14)

माधवराव सप्रे

कर्मयोगी पत्रकार (पृष्ठ-15)

जम्मू-कश्मीर विशेष

मुखौटों को चेहरा बताने की त्रासदी

(पृष्ठ 16-17)

परिचर्चा (पृष्ठ 18)

अतिवाद केवल कट्टरपंथी संगठनों का ही एकाधिकार नहीं है। यह सिर्फ हथियारों की ही भाषा नहीं बोलता, बल्कि हथियारों तक तो बाद में पहुंचता है। पहले तो यह किसी के दिमाग में पनपता और पलता है। अतिवाद का यह बौद्धिक रूप है। किसी लादेन के दिमाग में पल रहे अतिवाद को सामने आने के लिये संसाधन चाहिये, हथियार चाहिये, उस पर आंख मूंद कर भरोसा करने वाले लोग चाहिये। लेकिन बौद्धिक आतंकवाद को सिर्फ प्रचार माध्यम चाहिये, अखबार चाहिये, टीवी चाहिये। इस अतिवाद में अपनी टीआरपी तलाशते एंकर और बौद्धिक जुगाली के लिये बेताब पैनलिस्ट तो भारत जैसे देश में सहज ही उपलब्ध हैं...

अतिवाद केवल कट्टरपंथी संगठनों का ही एकाधिकार नहीं है। यह सिर्फ हथियारों की ही भाषा नहीं बोलता, बल्कि हथियारों तक तो बाद में पहुंचता है। पहले तो यह किसी के दिमाग में पनपता और पलता है। अतिवाद का यह बौद्धिक रूप है। किसी लादेन के दिमाग में पल रहे अतिवाद को सामने आने के लिये संसाधन चाहिये, हथियार चाहिये, उस पर आंख मूंद कर भरोसा करने वाले लोग चाहिये। लेकिन बौद्धिक आतंकवाद को सिर्फ प्रचार माध्यम चाहिये, अखबार चाहिये, टीवी चाहिये। इस अतिवाद में अपनी टीआरपी तलाशते एंकर और बौद्धिक जुगाली के लिये बेताब पैनलिस्ट तो भारत जैसे देश में सहज ही उपलब्ध हैं।

मीडिया ट्रायल कर पुलिस की जांच शुरू होने से पहले ही फैसला सुना देना भी एक प्रकार का अतिवाद ही है। जरा फरवरी माह में दक्षिण दिल्ली के होली चाइल्ड ऑक्जिलियम स्कूल में हुई चोरी पर मची हाय-तौबा याद कीजिये। कई दिनों तक चैनलों और अखबारों में यह खबर छाई रही। प्राइम टाइम में जुटे विद्वानों ने इस पर जी-भर कर मोदी सरकार को कोसा। कारण सिर्फ इतना था उक्त स्कूल चर्च द्वारा संचालित है और मोदी सरकार बनने के बाद मौका ताक रहे मीडिया के धुरंधरों को इस घटना ने यह साबित करने का मौका दे दिया था कि मोदी के राज में अल्पसंख्यक सुरक्षित नहीं। महीनों की पस्ती के बाद सेकुलर जमात के लिये यह ठंडी हवा का झोंका था, जिसका वे पूरा मजा ले रहे थे।

होली चाइल्ड स्कूल की प्रधानाचार्य और वहां के अधिकारी बार-बार यह कहते रहे कि चोर ने ईसाई आस्था के प्रतीकों को जरा भी नुकसान नहीं पहुंचाया था। लेकिन फिर भी राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय मीडिया इसे हिन्दू अतिवादियों द्वारा ईसाई संस्थाओं पर हमले के रूप में प्रचारित करता रहा। यह भी कहा जाता रहा कि इन हिंदू संगठनों पर लगाम लगाने की हिम्मत या नीयत मोदी सरकार की नहीं है।

पुलिस प्रमुख भीमसेन बस्सी को तीखी आलोचना का सामना करना पड़ा जब उन्होंने इसे साधारण चोरी की घटना बताया। एक राष्ट्रीय समाचारपत्र ने गृह मंत्रालय के एक अज्ञात अधिकारी के हवाले से छापा कि सरकार बस्सी के विष्लेषण से संतुष्ट नहीं है। ईसाई नेता जॉन दयाल ने गृहमंत्री से मिलने के बाद कहा कि पुलिस इस घटना को चोरी, सेंधमारी और अनधिकृत प्रवेश से जोड़ रही है, जबकि यह कोई सामान्य घटना नहीं, बल्कि हमारे धार्मिक स्थलों पर हमला है। जॉन दयाल खुद पत्रकार है और जानते हैं कि छपे हुए शब्द की क्या कीमत होती है और यह भी जानते ही होंगे कि सच के आवरण में छपा हुआ झूठ कितना खतरनाक होता है। इसी बीच न्यूयॉर्क टाइम्स में सम्पादकीय छपा जिसमें लिखा गया- 'भारत में धार्मिक अल्पसंख्यकों पर बढ़ते हमलों पर प्रधानमंत्री मोदी कब बोलेंगे। ईसाई धार्मिक स्थलों पर हुए हमले सभी भारतीयों के प्रतिनिधि और रक्षक के रूप में चुने गये व्यक्ति को प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिये प्रेरित नहीं कर सके। चिंतित करने वाली निरंतर बढ़ रही असहिष्णुता के बीच मोदी की चुप्पी यह संकेत दे रही है कि वे इन हिंदू राष्ट्रवादियों को या तो नियंत्रित कर नहीं सकते अथवा करना नहीं चाहते।'

गणतंत्र दिवस पर मुख्य अतिथि के रूप में पधारे अमेरिकी राष्ट्रपति ओबामा जाते-जाते धार्मिक सहिष्णुता का उपदेश देना नहीं भूले। उस उपदेश की याद दिलाते हुए न्यूयॉर्क टाइम्स ने सम्पादकीय में टिप्पणी की 'मि. मोदी को धार्मिक असहिष्णुता पर अपनी खामोशी तोड़नी चाहिये।'

एक ओर मीडिया मोदी सरकार और राष्ट्रवादियों के खिलाफ हवा में तलवारें भांज रही थी और दूसरी ओर दिल्ली पुलिस ने मामले की गंभीरता को समझते हुए आनन-फानन में एक विशेष जांच दल का गठन कर दिया, जिसमें छ: इंस्पेक्टरों सहित 21 पुलिसकर्मी थे। सुरागों का पीछा करते हुए पुलिस ने दिल्ली में रह रहे मणिपुर के मूल निवासी एक छात्र राहुल मोराइंगथम को गिरफ्तार किया तो मामले की परतें खुलती गयी। राहुल ने घटना में अपनी संलिप्तता स्वीकार कर ली।

मामला सुलझ गया, जांच खत्म हुई और आरोपी गिरफ्तार हो गये हैं। कई दिनों तक जिन हिन्दू अतिवादियों को पानी पी-पी कर कोसा गया उनका घटना से दूर-दूर तक संबंध नहीं साबित हुआ। लेकिन अगर कथित हिन्दू अतिवादी मामले से बेदाग छूटे हैं तो इसमें मीडिया की भला क्या रुचि हो सकती है। नतीजतन, मामले के पर्दाफाश से सामने आये तथ्यों को जनता तक पहुंचाने के बजाय मीडिया का एक बड़ा वर्ग इस पर चुप्पी साध गया। जॉन दयाल अब खामोश हैं, न्यूयॉर्क टाइम्स के लिये तो यह खबर ही नहीं है, तमाम चैनल, और उनके विद्वान पेनलिस्ट जिन्होंने कई दिनों तक अथक परिश्रम उन काल्पनिक अतिवादियों पर हमला करने में किया, इस खुलासे का संज्ञान लेने से भी बच रहे हैं। अगर आप यह उम्मीद कर रहे हैं कि मीडिया में से कोई भी सामने आकर विनम्रतापूर्वक यह स्वीकार करेगा कि गलती हुई तो आप भ्रम में हैं। इक्कीसवीं सदी की पत्रकारिता अपनी गलती पर शर्मिन्दा नहीं होती। देश की धार्मिक सहिष्णुता को राहुल की चोरी से कम, मीडिया की इस सीनाजोरी से ज्यादा खतरा है।

इस का विपरीत चित्र भी हम सबके सामने हैं जहां बांग्ला देश में ब्लॉगरों की हत्या पर तो टिप्पणी आई, लेकिन उन हत्याओं के पीछे की कट्टरपंथी विचारधारा के खिलाफ तीखापन गायब था। काश्मीर में तो मानवाधिकार के नाम पर इसी कट्टरता के साथ मीडिया को कदमताल करते देखा जा सकता है। इस अंक में मीडिया के इस बहुसंख्यक अथवा मुख्यधारा विरोधी चरित्र का विष्लेषण करने की कोशिश की गयी है। अन्य अनेक स्तंभों में भी रुचिकर सामग्री सहेजने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास में संवादसेतु टोली कहां तक सफल हुई है, यह तो आपकी प्रतिक्रियाओं से ही व्यक्त होगा।

निशाने पर ब्लॉगर

जब वह ढाका पुस्तक मेले से अपनी पत्नी के साथ वापस लौट रहे थे, तो उन पर धारदार हथियारों से हमला किया गया। इस हमले में उनकी पत्नी रफीदा अहमद भी घायल हो गई थी। इसके अलावा मार्च में एक और ब्लॉगर वशीकुर रहमान की ढाका में हत्या कर दी गई। इस मामले में दो मदरसा छात्रों को गिरफ्तार किया गया था। इसके बाद 33 वर्षीय अनंत विजॉय दास की हत्या कर दी गई। पुलिस के अनुसार जब अनंत बिजॉय दास सुबह सिलहट शहर के सुबिड बाजार इलाके में स्थित अपने घर से ऑफिस जा रहे थे, तभी नकाबपोश लोगों ने उन पर चाकूओं से हमला कर दिया...

ब्लॉगिंग अपनी कुछ विशेषताओं की वजह से इस समय कुंददिमाग, कट्टरपंथियों के निशाने पर है। मिस्र, सऊदी अरब और बांग्लादेश में या तो व्यवस्था ही ब्लॉगरों को निशाना बना रही हैं या फिर स्वयं को संप्रभु मानने वाली कट्टरपंथी ताकतें ही अपने फैसले मनमाने ढंग से सुना रही हैं।

ब्लॉगरों पर सबसे अधिक निशाना बांग्लादेश में साधा जा रहा है। अभी हाल ही में एक ब्लॉगर निलॉय मुखर्जी की हत्या कर दी गई। बांग्लादेश में ब्लॉगरों की हत्या की शुरुआत 2013 में हुई थी, जब एक चरमपंथी समूह ने ब्लॉगर अहमद रजीब हैदर की हत्या कर दी थी। सर्वाधिक चर्चा ब्लॉगर अभिजीत रॉय हत्याकांड की हुई। रॉय बांग्लादेश में जन्मे अमेरिकी नागरिक थे। 45 वर्षीय अभिजीत रॉय 'मुक्तो मोन' या स्वतंत्र मन के नाम से ब्लॉग चलाते थे और वह पांथिक बंदिशों के खिलाफ पिछले काफी समय से अलख जगाए हुए थे। फरवरी 2015 में उन पर उस समय हमला किया गया, जब वह बांग्लादेश आए हुए थे।

वह ढाका पुस्तक मेले से अपनी पत्नी के साथ वापस लौट रहे थे तो उन पर धारदार हथियारों से हमला किया गया। इस हमले में उनकी पत्नी रफीदा अहमद भी घायल हो गई थी। इसके अलावा मार्च में एक और ब्लॉगर वशीकुर रहमान की ढाका में हत्या कर दी गई। इस मामले में दो मदरसा छात्रों को गिरफ्तार किया गया था। इसके बाद 33 वर्षीय अनंत बिजॉय दास की हत्या कर दी गई। पुलिस के अनुसार जब अनंत बिजॉय दास सुबह सिलहट शहर के सुबिड बाजार इलाके में स्थित अपने घर से ऑफिस जा रहे थे, तभी नकाबपोश लोगों ने उन पर चाकुओं से हमला कर दिया। दास के एक करीबी दोस्त शहीदुज्मान पापलू ने मीडिया को बताया कि वह ब्लॉग पर 'भौतिकवाद और तर्क' पर लेखन के लिए जाना जाता था। अनंत ने अविजित रॉय की एक पुस्तक की समीक्षा भी की थी। इससे उनकी छवि रॉय समर्थक की बन

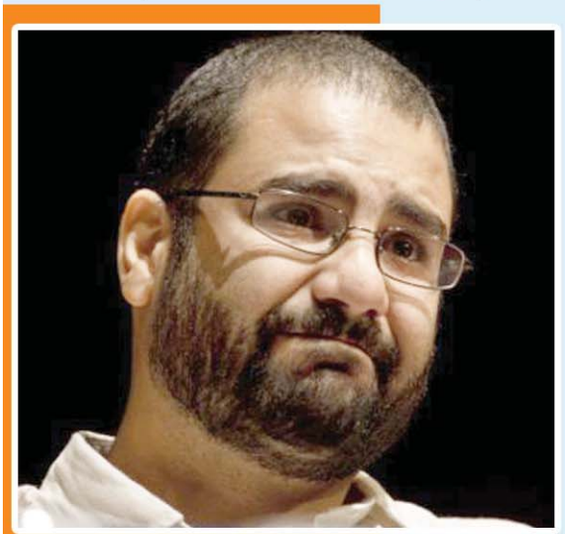

इस जुर्म के खिलाफ उन्हें 10 साल की जेल और सार्वजनिक रूप से 1 हजार कोड़े मारने की सजा सुनाई गई थी। हालांकि कोड़े की सजा करने की तामील एक बार में नहीं की जानी थी। एक बार में 50 कोड़े लगाए जाने थे और ऐसा 20 हते तक किया जाना था। रैफ ने इस सजा के खिलाफ सऊदी अरब के उच्चतम न्यायालय में अपील की, लेकिन वहां पर भी सजा बरकरार रखी गई। स्वतंत्र विचारों को व्यक्त करने के लिए इतनी कड़ी और भौंडी सजा की पूरी दुनिया में निंदा हुई थी...

गई थी। संभवत: इसी कारण अनंत भी कट्टरपंथियों की आंख के किरकिरी बन गए थे। बांग्लादेश में हुई इन हत्याओं ने इस देश की सुधरती छवि को काफी नुकसान पहुंचाया। हालांकि बाद में बांग्लादेश के अधिकारियों ने यह स्पष्टीकरण देकर सनसनी मचा दी कि देश में हो रही ब्लॉगरों की हत्याओं के पीछे पाकिस्तानी खुफिया एजेंसी आईएसआई का हाथ है। सऊदी अरब में भी ब्लॉगर रैफ बादावी को दी गई अनूठी सजा ने दुनिया भर के लोगों का ध्यान खींचा। उनके ऊपर 2012 में सऊदी सूचना कानूनों के उल्लंघन और इस्लाम के अपमान का आरोप लगा था। रैफ पर यह आरोप अपनी वेबसाइट 'सऊदी अरब लिबरल्स' पर व्यक्त किए गए विचारों के कारण लगा था। इस जुर्म के खिलाफ उन्हें 10 साल की जेल और सार्वजनिक रूप से एक हजार कोड़े मारने की सजा सुनाई गई थी। सजा में रहम यह किया गया था कि कोड़े मारने की तामील एक बार में नहीं की जानी थी। दया दृष्टि के साथ एक बार में केवल 50 कोड़े लगाए जाने की अनुमति दी गई थी। इस तरह रैफ को लगातार 20 हफ्तों तक 50 कोड़े लगाए जाने थे। रैफ ने इस सजा के खिलाफ सऊदी अरब के उच्चतम न्यायालय में अपील की, लेकिन वहां पर भी सजा बरकरार रखी गई। स्वतंत्र विचारों को व्यक्त करने के लिए इतनी कड़ी और भौंडी सजा की पूरी दुनिया में निंदा हुई थी। इसी तरह मिस्र में 2011 में हुए सत्ता विरोधी प्रदर्शनों के एक ब्लॉगर चेहरे को भी पांच साल की सजा सुनाई गई। अला एब्द अल फतह पर 13 हजार डॉलर का जुर्माना भी लगाया गया। उन पर अपने लेखन और सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन कर शांति व्यवस्था भंग करने का आरोप लगा था। मिस्र में तो फतह की सजा के खिलाफ तीखी प्रतिकिया हुई थी और लोग सड़कों पर उतर आए थे। फतह की बहन को भी सार्वजनिक सक्रियता के लिए तीन साल की सजा सुनाई गई थी।

इसी प्रकार सीरियाई ब्लॉगर ताल दोसर अल मल्होही को 2011 में सुनाई गई सजा से पूरी दुनिया सन्न रह गई थी। हाई स्कूल की पढ़ाई करने वाली मल्होही को अपने ब्लॉग पर फिलीस्तीन के बारे में कविताएं लिखने और सामाजिक टिप्पणियां करने के लिए गिरफ्तार कर लिया गया था और पांच साल की सजा सुनाई गई। लंबे समय तक ताल के परिवार वालों का पता ही नहीं चल पाया था कि आखिर उसे किस गुनाह के लिए गिरफ्तार किया गया है। बाद में सीरिया सरकार को कुछ नहीं सूझा तो उसने मल्होही को अमेरिका का जासूस बताकर उसकी गिरफ्तारी को जायज ठहराया था। उस समय 17 वर्षीय मल्होही का जुर्म केवल इतना था कि उसने सीरिया का भविष्य सीरियाई नागरिकों द्वारा गढ़े जाने की बात कही थी और इसमें बराक ओबामा का समर्थन भी मांगा था।

प्रश्न यह उठता है कि जब कट्टरपंथी ताकतें फेसबुक और ट्विटर का राजनीतिक और रणनीतिक उपयोग कर रही हैं। आईएस जैसे संगठन अपने बर्बर कारनामों को इन सोशल साइट्स पर शेयर कर रही हैं। यह कभी-कभी अपना अकाउंट बंद करने पर इन कंपनियों को हड़काता भी है तो ब्लॉगिंग पर इस जमात की नजरें

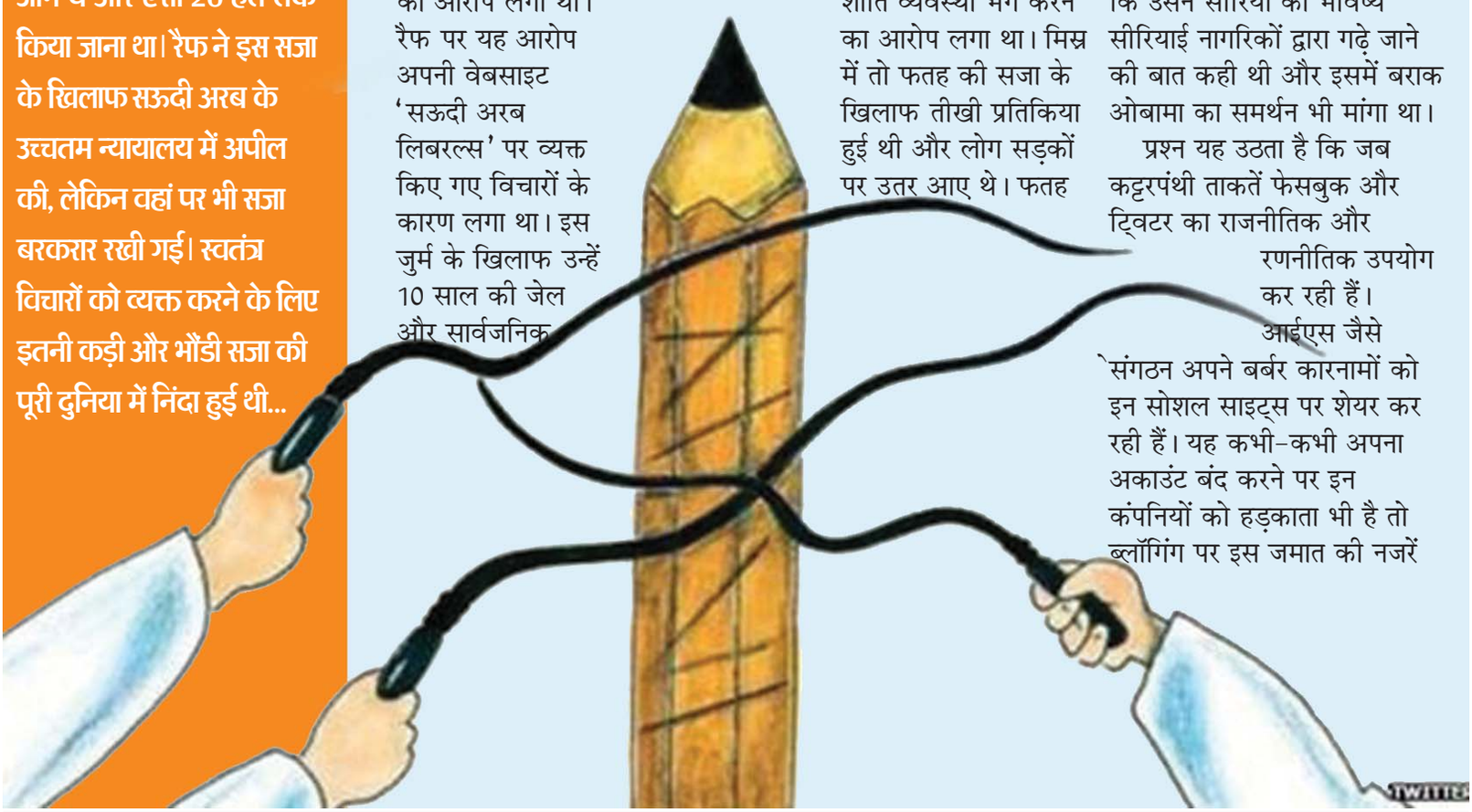

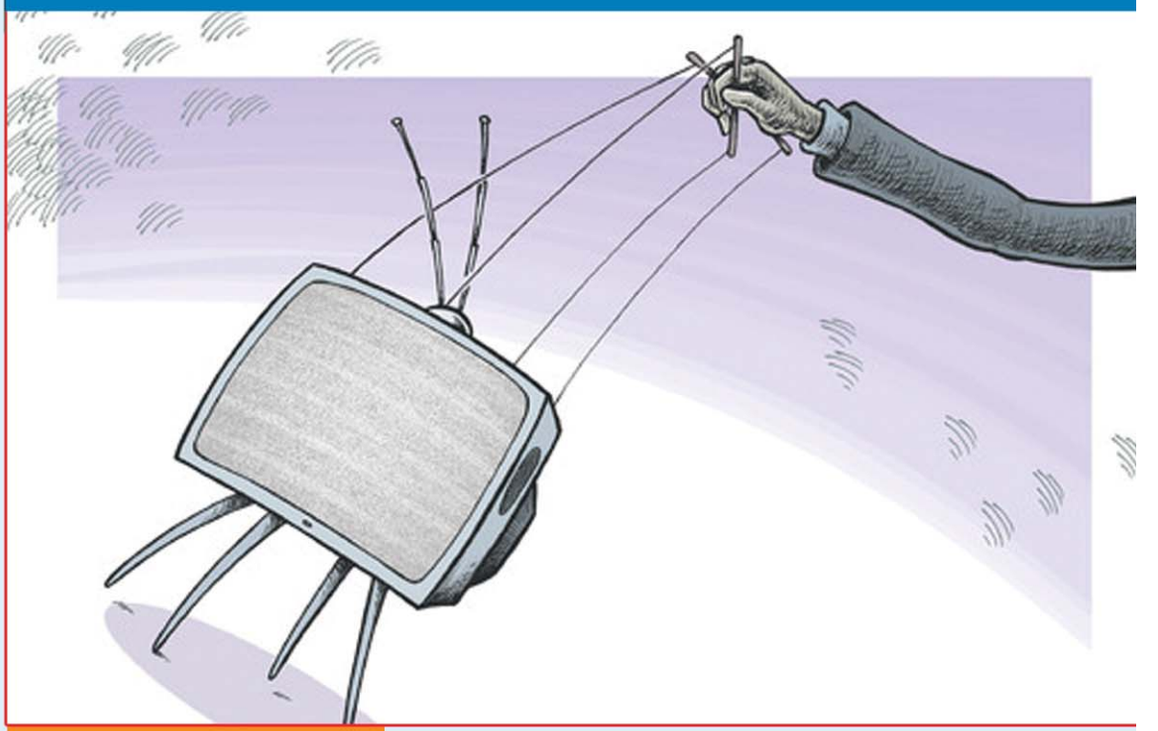

टेढ़ी क्यों हैं? इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए हमें ब्लॉगिंग की कुछ विशेषताओं से परिचित होना पड़ेगा। पहला यह कि ब्लॉग एकमात्र ऐसा प्लेटफार्म है, जो स्वायत्त और नि:शुल्क होने के साथ गंभीर मुद्दों के लिए व्यापक स्पेस उपलब्ध कराता है। फेसबुक और ट्विटर की प्रकृति सूचनात्मक है। कब, कहां, क्या हो रहा है, इसके बारे में फेसबुक और ट्विटर बहुत सजग हैं। इसलिए शादी के मंडप से लेकर डोली में बैठने तक, सामूहिक भाषण से लेकर लोगों से की गई व्यक्तिगत भेंट-मुलाकात तक की सूचनाएं फेसबुक के जरिए शेयर की जाती हैं। हद तो तब हो जाती है, जब परिजनों के जीने-मरने, मिलने-बिछड़ने तक की सूचनाएं भी इन फेसबुक पर ब्रेकिंग न्यूज के रूप में अवतरित होती हैं। ट्विटर तो और भी अधिक एकतरफा और सीमित स्पेस वाला माध्यम है। वहां तो शब्द सीमा तय है। इसलिए अपनी बात कहने से पहले उसमें कटनी-छंटनी करनी पड़ती है। जाहिर है विश्लेषण के लिए जो फैलाव चाहिए वह यहां पर उपलब्ध नहीं है। यहां पर सूत्र शैली में तथ्यों की तरफ बहुत प्रारंभिक संकेत किया जा सकता है और वही किया भी जाता है। ब्लॉग की दुनिया फेसबुक और ट्विटर से अलग है। यह इनकी तरह ही नि:शुल्क और स्वायत्त है। लेकिन खुद को अभिव्यक्त करने के लिए व्यापक स्पेस उपलब्ध कराने के कारण इसकी हैसियत अलहदा हो जाती है। यहां पर मूल और गंभीर मुद्दों के लिए पर्याप्त स्पेस होता है। अपनी बात कहने के लिए शब्द सीमा की बाधा नहीं होती। कोई भी व्यक्ति अपने विचारों को ब्लॉग पर व्यवस्थित और विशद तरीके से अभिव्यक्त कर सकता है। सैद्धांतिक अवधारणाओं और मूल-मान्यताओं की जांच पड़ताल के लिए ब्लॉग आदर्श प्लेटफार्म है।

अवधारणाओं और मान्यताओं के खंडन-मंडन के लिए यहां पर व्यापक स्पेस होता है। इसलिए कोई भी स्वतंत्र चेता व्यक्ति अपने अगल-बगल की मूर्खताओं पर ब्लॉग के जरिए व्यवस्थित तरीके से सवाल उठा सकता है।

हर पक्ष दूसरे पर सवाल उठा रहा होता है, लेकिन उत्तर देने की जहमत कोई नहीं उठाता, क्योंकि इनकी बनावट ही बौद्धिक विमर्शों के लिए नहीं है। अधिक से अधिक विमर्श के नाम पर चुटकुलेबाजी की जा सकती है। ब्लॉग के जरिए व्यवस्थित तरीके से प्रश्न पूछे जा सकते हैं और बिंदुवार उत्तर भी दिया जा सकता है। ब्लॉग पर उठाए गए प्रश्न अधिक तीक्ष्ण और असरकारी होते हैं। ब्लॉग के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उत्तरदाता को अपनी मान्यताओं को बौद्धिक खराद पर चढ़ाना पडता है...

यह काम फेसबुक और ट्विटर पर नहीं किया जा सकता। हां, शास्त्रार्थ के नाम पर यहां गाली-गलौज, लानत-मलानत जरूर की जा सकती है। शायद इसीलिए फेसबुक और ट्विटर पर प्रश्नों की भरमार होती है। हर पक्ष दूसरे पर सवाल उठा रहा होता है, लेकिन उत्तर देने की जहमत कोई नहीं उठाता, क्योंकि इनकी बनावट ही बौद्धिक विमर्शों के लिए नहीं है।

अधिक से अधिक विमर्श के नाम पर चुटकुलेबाजी की जा सकती है। ब्लॉग के जरिए व्यवस्थित तरीके से प्रश्न पूछे जा सकते हैं और बिंदुवार उत्तर भी दिया जा सकता है। ब्लॉग पर उठाए गए प्रश्न अधिक तीक्ष्ण और असरकारी होते हैं। ब्लॉग के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उत्तरदाता को अपनी मान्यताओं को बौद्धिक खराद पर चढ़ाना पड़ता है। कट्टरपंथियों के लिए यह सबसे असहज काम है। उनकी तो सारी गतिविधियां इसी आधार पर चलती हैं कि अंतिम सत्य पर उनका आधिपत्य है। अंतिम सत्य के बारे में वह अंतिम निर्णय कर चुके होते हैं। यह स्थिति उनको सत्य का ठेकेदार बना देती है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि असत्य की भारी बारिश से तब तक नहीं बचा सकता, जब तक उनके सत्य की छतरी में शरणागत न हुआ जाए। यह असंदिग्ध विश्वास सवाल उठाए जाने की इजाजत नहीं देता। यदि कोई प्रश्न उठाता है तो वह एक नापाक कार्य करता है और कट्टरपंथी जमात की नजर में दुनिया में जीवित रहने का नैतिक अधिकार खो देता है।

जीवन के अधिकार को सहमति-असहमति के निर्धारित करने वाले तर्क की अंतिम परिणति असहमतियों को मौत के घाट उतारने में होती है। ब्लॉगरों की हत्या में यही तर्क कार्य कर रहा है।

बीबीसी के मायने

जयप्रकाश सिंह

किसी आलेख में शेर यह आपत्ति दर्ज कराता हुआ मिल जाएगा कि महाराज क्या मुझे अपना पेट मुर्गी के मांस से ही भरना पड़ेगा, ऐसा मत कीजिए, क्योंकि अब तक जंगल और चिड़िया घर में मैं प्रतिदिन गोमांस ही खाता था। कहीं पर कोई लेखक इस बात पर फिक्रमंद नजर आ जाएगा कि वह अब गरीबों का क्या होगा? आखिर अभी तक उनकी प्रोटीन संबंधी जरूरतें गोमांस से ही तो पूरी होती थीं। यह देखिए-यह सरकार गरीबों के गोमांस को प्रतिबंधित कर गरीबों के भोजन पर डाका डाल रही है। हैरानी की बात यह कि ऐसे ज्ञानियों को यह भी पता नहीं है कि गाय दूध भी देती है और उसमें भी प्रोटीन होती है। बीबीसी के साहबों को यह भी पता नहीं है कि दाल, गोमांस से सस्ती है और भारत में अधिकांश लोगों की प्रोटीन संबंधी जरूरतों को दाल के जरिए भी पूरा किया जा सकता है...

बीबीसी द्वारा हिंदू धर्म के संदर्भ में प्रयोग किए जाने वाले चित्रों का कोलाज

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने सभी तरह के संघर्षों और उसमें विजय प्राप्त करने की रणनीतियों को छवि केंद्रित बना दिया है। इस प्रक्रिया से एक विरोधाभासी स्थिति अस्तित्व में आई है। इसके कारण एक तरफ देश, काल संबंधी दूरियां घटी हैं, तो वहीं दूसरी तरफ उपभोग एक चरम मूल्य के रूप में उभरा है। बढ़ती उपभोक्तावादी प्रवृत्ति ने व्यक्ति को बाजार द्वारा गढ़े गए विशिष्ट खांचे में जीवन जीने के लिए विवश किया है। उसकी चिंताओं और प्राथमिकताओं का केंद्रीकरण किया है और उसे एक निरीह उपभोक्ता में तब्दील कर रख दिया है। उपभोक्तावाद की यह प्रवृत्ति केवल भौतिक उत्पादों तक सीमित नहीं है। यह सूचनाओं के संसार को भी अपनी चपेट में ले चुकी है। अधिक से अधिक उपभोग के संसाधनों को जुटाने की दौड़ ने व्यक्ति के चहुंओर आवश्यकताओं की ऐसी ऊंची दीवार खड़ी कर दी है, जिसने उसको सामाजिक दृष्टि से असंवेदनशील बना दिया है। इसके साथ ही उपभोक्तावाद ने सहभागिता आधारित सूचनाएं अर्जित करने और किसी अन्य स्रोत से प्राप्त सूचनाओं की जांच-पड़ताल के समय को भी निगल लिया है। ऐसे में जनमाध्यमों से प्राप्त सूचनाओं को अंतिम सच मानने की प्रवृत्ति जन्म लेती है और व्यक्ति सूचनाओं का

निष्क्रिय उपभोक्ता बन जाता है। अंतराष्ट्रीय संदर्भों और विदेश नीति के मामलों में सूचना उपभोक्तावाद की यह स्थिति एक घातक हथियार का रूप धारण कर लेती है। यह सूचना सबल देशों द्वारा निर्बल देशों के छवि और चरित्र हनन की संभावनाओं का जन्म देता है। इसका लाभ उठाकर विकसित देश आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से चुनौती पेश करने वाले देशों की नकारात्मक छवि पूरी दुनिया में पेश करते हैं और उसकी आगे बढ़ने की संभावनाओं को नुकसान पहुंचाते हैं। आखिर निवेश, वैश्विक उपस्थिति बहुपक्षीय चर्चाओं में प्रतिरोध की शक्ति, सभी कुछ देश की छवि पर ही तो निर्भर करता है।

यदि किसी संभावनाशील देश की छवि को धूमिल कर दिया जाए तो वैश्विक मंचों पर प्रतिरोध की आवाज उठने की संभावना तो कम होती है, आर्थिक चुनौती धराशायी होती है और सांस्कृतिक श्रेष्ठता भी स्थापित होती है।

डायूमेंट्री देश में अपवाद माने जाने वाली मानसिकता को भारत की मूल मानसिकता बताने का प्रयास है। इंडियाज डॉटर बलात्कार की सच्चाई जानने का प्रयास नहीं है, बल्कि यह सच का बलात्कार करने का प्रयास है। फिल्म को इस तरह बनाया गया है मानो हर भारतीय युवा मुकेश कुमार है, जो न केवल बलात्कार को जायज मानता है, बल्कि वैसा करने की फिराक में घात लगाए बैठा भी रहता है...

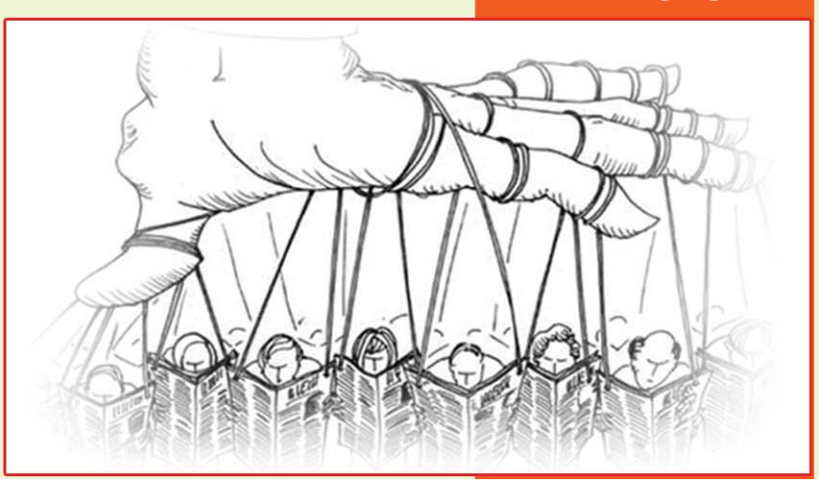

भारत में नई राष्ट्रवादी सरकार बनने से ऐसी शक्तियों के निशाने पर यकायक भारत आ गया है। भारत का चरित्र हनने करने वाले और समग्र भारतीय पहचान से असहज महसूस करने वाले 'भारत भंजक कारपोरेशंज'(बीबीसी) सक्रिय हो गए है। छोटी-छोटी बातों को जिस तरह से अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर उठाया जा रहा है और अंतर्राष्ट्रीय मीडिया में जिस तरह उसको कवरेज मिल रही है, उससे तो यही लगता है कि यह छवि हनन का एक सुनियोजित अंतर्राष्ट्रीय षड्यंत्र है।

इसका सबसे ताजा उदाहरण बीबीसी द्वारा प्रायोजित 'इंडियाज डॉटर डाक्यूमेंटरी' है। बीबीसी ने स्टोरी विले शृंखला के तहत 2012 के निर्भया कांड पर आधारित 58 मिनट की एक फिल्म बनाई है। इसका लेखन और निर्देशन लेसली उडविन ने किया है। इस फिल्म को महिला दिवस के पूर्व एक मार्च को बीबीसी और चार मार्च को एनडीटीवी पर दिखाया जाना था। शुक्र है कि सरकार इसके कथ्य को लेकर ठीक समय पर जगी और फिल्म के प्रदर्शन पर रोक लगा दी।

हिंदी और अंग्रेजी में बनी यह फिल्म भारत में तो नहीं दिखाई जा सकी, लेकिन 11 मार्च को इस फिल्म का प्रदर्शन अमेरिका सहित देश के अन्य हिस्सों में हो गया। फिल्म में सबसे अधिक विवाद निर्भया कांड के मुजरिमों में से एक मुकेश सिंह के साक्षात्कार और दूसरा मुजरिमों की पैरवी कर रहे वकीलों के बयान को लेकर है।

डाक्यूमेंट्री पर प्रतिबंधित करने की वकालत करने वालों को कहना है, फिल्म में साक्षात्कार के उन्हीं हिस्सों को जगह दी गई है, जो फिल्म को सनसनीखेज बनाते हैं और भारत की छवि एक महिला विरोधी और आदिम मानसिकता वाले देश के रूप में गढ़ते हैं। फिल्म से जुड़े रहे

भारतीय पत्रकार दिबांग खुद इस बात को स्वीकार करते हैं कि हमने मुकेश कुमार का लगातार छह घंटे इंटरव्यू लिया। लेकिन इस डाक्यूमेंट्री में उसके वही हिस्से दिखाए गए हैं जो बनाने वालों की पूर्वनियोजित स्क्रिप्ट के अनुरूप थे। इसके अतिरिक्त इस घटना से जुड़े अन्य लोगों के साक्षात्कार नहीं लिए गए। जो इस घटना और इससे जुड़ी मानसिकता के अन्य पक्षों को उजागर कर सकते थे।

फिल्म देश में अपवाद माने जाने वाली मानसिकता को भारत की मूल मानसिकता बताने का प्रयास है। इंडियाज डॉटर बलात्कार की सच्चाई जानने का प्रयास नहीं है, बल्कि यह सच का बलात्कार करने का प्रयास है। फिल्म को इस तरह बनाया गया है मानो हर भारतीय युवा मुकेश कुमार है, जो न केवल बलात्कार को जायज मानता है, बल्कि वैसा करने की फिराक में घात लगाए बैठा भी रहता है। फिल्म को प्रतिबंधित करने के पक्षधरों का तर्क उस समय सही साबित होता दिखा, जब जर्मनी की लीपजिग यूनीवर्सिटी में बायोकेमिस्ट्री की प्रोफेसर एनेज जी बेक श्किंगर ने एक भारतीय छात्र का इंटर्नशिप आवेदन इस डाक्यूमेंट्री से गढ़ी गई छवि के आधार पर ठुकरा दिया। उनका तर्क था कि बलात्कार भारतीय मानसिकता का हिस्सा है और क्योंकि हमारे संस्थान में छात्राओं की संख्या अधिक है, इसलिए हम किसी भारतीय छात्र को अपने विभाग में प्रवेश देने का जोखिम नहीं उठा सकते।

फिल्म को प्रतिबंधित करने के पक्षधरों का तर्क उस समय सही साबित होता दिखा, जब जर्मनी की लीपजिग यूनीवर्सिटी में बायोकेमिस्ट्री की प्रोफेसर एनेज जी बेक श्किंगर ने एक भारतीय छात्र का इंटर्नशिप आवेदन इस डायूमेंट्री से गढ़ी गई छवि के आधार पर ठुकरा दिया। उनका तर्क था कि बलात्कार भारतीय मानसिकता का हिस्सा है और योंकि हमारे संस्थान में छात्राओं की संया अधिक है, इसलिए हम किसी भारतीय छात्र को अपने विभाग में प्रवेश देने का जोखिम नहीं उठा सकते...

हद तो तब हो गई जब गिरिराज सिंह के बयान की 'वस्तुनिष्ठ' व्याख्या करते हुए वुडविन ने उनको बलात्कारी ठहरा दिया। मीडिया ने भी उनके इस बयान को सर-आंखों पर लिया। अब भारत में होने वाली घटना में वुडविन का कूदना और अपनी डाक्यूमेंट्री का समर्थन करने वाले बयान का देना, उनके भारत संबंधी पूर्वाग्रह को ही अभिव्यक्त करता है। जाहिर है यह भारत के चरित्र हनन का प्रयास था और इसमें इस डाक्यूमेंट्री को तात्कालिक सफलता भी मिली। इसे एक षड्यंत्र का हिस्सा मानना इसलिए भी सही है, क्योंकि इससे पहले भी भारत संबंधी प्रस्तुति में बीबीसी अपने पूर्वाग्रहों को लेकर आलोचना का शिकार होता रहा है। कल्पना चावला की मृत्यु के बाद जिस तरह से बीबीसी ने उसे हरियाणा में होने वाली भ्रूण हत्या से जोड़कर प्रस्तुत किया था, उसकी पूरी दुनिया में निंदा हुई थी। 2014 में भाजपा की विजय के बाद बीबीसी के एंकर की मोदी के प्रति की गई टिप्पणी ने भी पूरी दुनिया में उसके पूर्वाग्रह को अभिव्यक्त किया था। बीबीसी की हिंदी वेबसाइट को आधार मानकर यदि कुछ हालिया घटनाओं की अंतर्वस्तु का विश्लेषण किया जाए तो भारत संबंधी पूर्वाग्रह और भी अधिक खुलकर सामने आता है।

मोदी के पीठ पर किसका हाथ

एक अस्पताल के उद्घाटन के अवसर पर मोदी और अंबानी परिवार की एक फोटो सामने आई। इसमें मोदी का स्वागत करते हुए मुकेश अंबानी उनकी पीठ पर हाथ रखे हुए हैं और मोदी उनका अभिवादन स्वीकार करते हुए उनका और उनकी पत्नी का हाथ अपने हाथों में थामे हुए हैं। बीबीसी पर इसी फोटों के आधार पर एक मार्मिक स्टोरी चलती है- मोदी की पीठ पर किसका हाथ। बड़ी साफगोई से यह साबित करने की कोशिश की जाती है कि मोदी की पीठ पर मुकेश अंबानी जैसे उद्योगपतियों का हाथ है। खुदा का शुक्र है कि लेखक ने इसी तर्क को

बीबीसी की हिंदू धर्म संबंधी स्टोरीज में प्रयोग किए जाने वाले चित्रों का अध्ययन किया जाए तो एक रोचक तथ्य उभरकर सामने आता है। हिंदू धर्म संबंधी प्रत्येक स्टोरी में ऐसे चित्रों का उपयोग किया है, जो इस धर्म की छवि एक पिछड़े, विज्ञान विरोधी और आदिम मानसिकता वाले धर्म के रूप में गढ़ते हैं। एक ऐसा धर्म जो गाय की पूजा करने जैसा आदिम कार्य करता है, भस्म और चंदन लगाकर धुनी रमाता है, जिसकी स्त्रियां सिंदूर को सुहाग का प्रतीक मानकर अपना मांग भरती हैं और कभी-कभी तो यह सिंदूर मांग से नीचे आकर नाक तक पहुंच जाता है....

आगे बढ़ाते हुए इसका विश्लेषण नहीं किया कि वह किस-किस का हाथ थामे हुए हैं, अन्यथा बात कहीं की कहीं पहुंच सकती थी। हो सकता है उद्योगपतियों और सरकार के बीच नजदीकी हो, लेकिन एक फोटो के आधार पर जिस तरह से नकारात्मक छवि गढ़ने की कोशिश की गई है, वह बीबीसी के 'प्रोफेशनल पत्रकार' ही कर सकते हैं। जिन वरिष्ठ पत्रकार ने यह स्टोरी लिखी है, उनकी तटस्थता के झंडे यहां से लेकर इंग्लैंड तक में फहरा रहे हैं।

हिंदू विरोधी छवियां: एक कोलाज

बीबीसी की हिंदू धर्म संबंधी स्टोरीज में प्रयोग किए जाने वाले चित्रों का अध्ययन किया जाए तो एक रोचक तथ्य उभरकर सामने आता है। हिंदू धर्म संबंधी प्रत्येक स्टोरी में ऐसे चित्रों का उपयोग किया है, जो इस धर्म की छवि एक पिछड़े, विज्ञान विरोधी और आदिम मानसिकता वाले धर्म के रूप में गढ़ते हैं। एक ऐसा धर्म जो गाय की पूजा करने जैसा आदिम कार्य करता है, भस्म और चंदन लगाकर धुनी रमाता है, जिसकी स्त्रियां सिंदूर को सुहाग का प्रतीक मानकर अपना मांग भरती है और कभी-कभी तो यह सिंदूर मांग से नीचे आकर नाक तक पहुंच जाता है। जिस धर्म के मानने वाले लोग मुंडन कराकर और धोती पहनकर श्राद्ध करते हैं और जिस धर्म में भगवान की वेशभूषा धारण कर उनकी लीलाओं का मंचन किया जाता है-सचमुच यह कितना पुरातन धर्म है, बीबीसी कुछ ऐसा ही संदेश पहुंचाना चाहता है। आप भी देख लीजिए कि इन चित्रों से हिंदू धर्म की कैसी छवि आपके दिमाग में बनती हैं- साभार बीबीसी!

गोमांस का सस्ता प्रोटीन और शेर की चिंता

जब से महाराष्ट्र और हरियाणा में गोमांस पर प्रतिबंध लगा है, उसके बाद से बीबीसी काफी बेचैन है। उसकी वेबसाइट पर गोवध और गोमांस संबंधी आलेखों की एक शृंखला चली। अब इस शृंखला का क्या उद्देश्य क्या है, इस पर बीबीसी ने घोषित रूप से तो कुछ नहीं बताया है, लेकिन इन आलेखों का समग्र अध्ययन कर सहज ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बीबीसी की मंशा क्या है और यह शृंखला किसको संतुष्ट करने के लिए चलाई जा रही है। इसमें भी देखने लायक बात यह है कि गाय के चित्रों का प्रयोग तो डरावने रूप में किया गया है, लेकिन गोमांस के चित्रों को प्रयोग बहुत ही स्वास्थ्यवर्द्धक ढंग से किया गया है, हरी-हरी पत्तियों में लपेटकर। इस शृंखला में तरह-तरह की चिंताएं जो कई बार विरोधाभासी भी हैं, उभरकर सामने आती हैं। जैसे किसी आलेख में शेर यह आपत्ति दर्ज कराता हुआ मिल जाएगा कि महाराज क्या मुझे अपना पेट मुर्गी के मांस से ही भरना पड़ेगा, ऐसा मत कीजिए, क्योंकि अब तक जंगल और चिड़िया घर में मैं प्रतिदिन गोमांस ही खाता था। कहीं पर कोई लेखक इस बात पर फिक्रमंद नजर आ जाएगा कि वह अब गरीबों का क्या होगा? आखिर अभी तक उनकी प्रोटीन संबंधी जरूरतें गोमांस से ही तो पूरी होती थीं। यह देखिए-यह सरकार गरीबों के गोमांस को प्रतिबंधित कर गरीबों के भोजन डाका डाल रही है। हैरानी की बात यह कि ऐसे ज्ञानियों को यह भी पता नहीं है कि गाय दूध भी देती है और उसमें भी प्रोटीन होती है।

बीबीसी के साहबों को यह भी पता नहीं है कि दाल, गोमांस से सस्ती है और भारत में अधिकांश लोगों की प्रोटीन संबंधी जरूरतों को दाल के जरिए भी पूरा किया जा सकता है। कहीं कोई सज्जन यह दलील देते हुए मिल जाएंगे कि साहब यह तो मानवाधिकारों का खुला उल्लंघन है। यह तो तानाशाही की चरम सीमा है। कहीं गोमांस जैसे सुस्वादु और सर्वप्रिय भोजन पर, जिसका कुछ पिछड़े और अज्ञानी लोग विरोध करते हैं, जिन्हें इसके पोषक मूल्यों का पता नहीं है, पर प्रतिबंध लगाना चाहिए। इन विद्वानों की कल्पना के भारत में सभी भारतीय गोमांस भक्षी हैं, जिनसे उनका प्राकृतिक अधिकार छीना जा रहा है। बीबीसी के ये उदाहरण भारतीय छवि के हनन के प्रयासों की तरफ संकेत करते हैं। मामला केवल ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कारपोरेशन का नहीं है। यहां तो बीबीसी जैसे कई भारत भंजक कारपोरेशनंज (बीबीसीज) कार्यरत हैं। इस समय जरूरत इनके असली चेहरों को पहचानने और सतर्क होने की है।

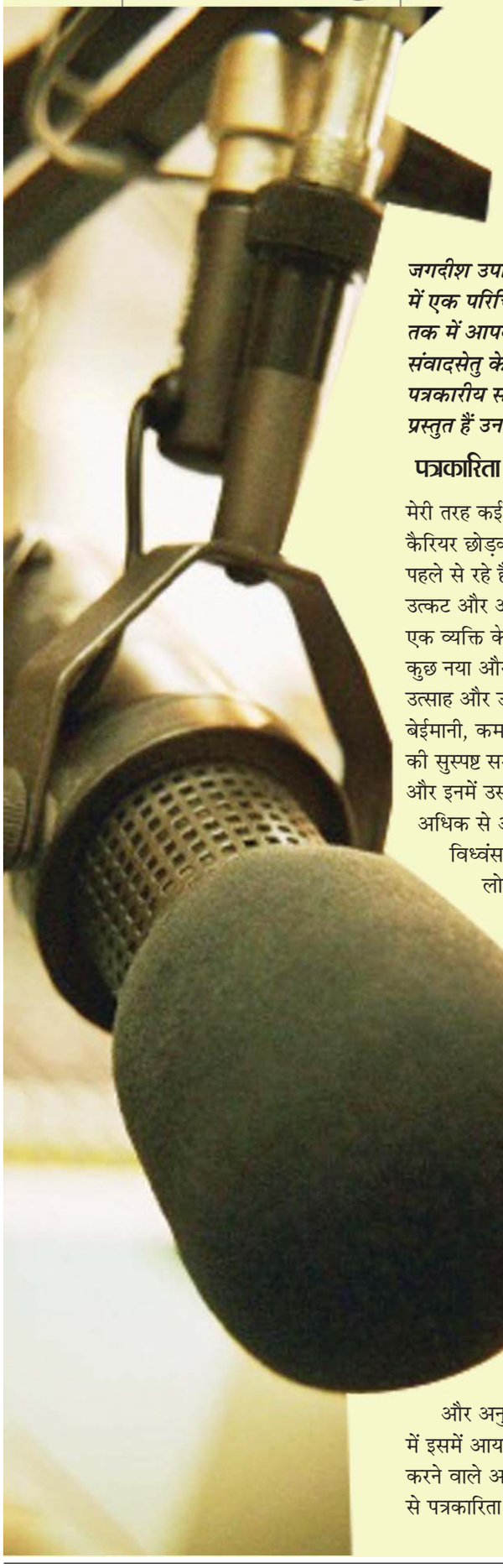

– जगदीश उपासने

जगदीश उपासने गंभीर एवं वस्तुनिष्ठ पत्रकारिता के क्षेत्र में एक परिचित चेहरा हैं। जनसत्ता से लेकर इंडिया टुडे तक में आपकी कलम जमीनी मुद्दों को कुरेदती रही है। संवादसेतु के इस अंक में हमने उनके व्यक्तित्व और पत्रकारीय सोच को जानने-समझने की कोशिश की है। प्रस्तुत हैं उनसे हुई बातचीत के प्रमुख अंश :

पत्रकारिता और अपने व्यक्तित्व को कैसे जोड़ते हैं?

मेरी तरह कई लोग दूसरा चमकता और अपेक्षाकृत सुरक्षित कैरियर छोड़कर या उसके प्रस्ताव ठुकराकर पत्रकारिता में हैं। पहले से रहे हैं और भविष्य में भी होंगे? पत्रकारिता तीव्र, उत्कट और आवेगपूर्ण भावना का मामला है। जरूरत हो तो एक व्यक्ति के लिए भी और आम तौर पर समष्टि के लिए कुछ नया और रचनात्मक अपनी समझ और बुद्धि से करने के उत्साह और उमंग से जुड़ा काम है। सही-गलत, ईमानदारी-बेईमानी, कमजोर-ताकतवर, न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित की सुस्पष्ट समझ व्यक्ति की अपने समाज और राष्ट्र में भूमिका और इनमें उसके योगदान के बारे में साफ धारणा की बात है। अधिक से अधिक लोगों का भला हो तो सीमित हितों के विध्वंस को न्यायसंगत मानने की बात है। मूलत: यह लोकतांत्रिक प्रवृत्ति है जो स्वतंत्र चेतना के विस्तार को जन्मसिद्ध अधिकार मानती है। पढ़ने-लिखने में जबरदस्त रुचि और समाज जीवन में सक्रिय भूमिका निभाने की ललक मुझ जैसे असंख्य लोगों को पत्रकारिता की ओर खींचती है। यह सोचा-समझा निर्णय होता है और तमाम असुरक्षाओं के बावजूद इसे निभाने की अदम्य इच्छा आजीवन रहती है। पत्रकारिता ऐसे लोगों में शायद बीजरूप में रहती हो और ऊपर लिखी सब बातों से परवान चढ़ती हो! पता नहीं, मुझमें भी यह पहले से थी या नहीं, लेकिन यह उत्कृष्ट संपादकों तथा उम्दा प्रकाशनों में काम करने तथा निरंतर प्रशिक्षण और अनुभव से यह सिरे जरूर चढ़ी। 70 के जिस दौर में इसमें आया उस समय महज नौकरी के लिए पत्रकारिता करने वाले अपवाद ही थे। विद्यार्थियों के संगठन में सक्रियता से पत्रकारिता में आना सहज और स्वाभाविक था। तीव्र रुचि यथावत होने से आगे की यात्रा भी सहज ही थी।

पत्रकारिता के क्षेत्र में कैसे आना हुआ? अपने पत्रकारीय जीवन के विभिन्न पड़ावों को बारे में बताएं।

हर तरह की पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने की रुचि, इधर-उधर की पुस्तकें, साहित्य पढ़ने की इच्छा ऐसी अदम्य कि घर में डांट के भय से बाहर रात में स्ट्रीट लाइट के नीचे या दिन में क्लास में छिपकर पुस्तकें खत्म कर लेने की जुगत जमाई जाती। स्कूल-कॉलेज की पत्रिकाओं में लेखन, फिर संपादक के नाम पत्र-लेखन, संपादकीय पृष्ठों पर मुख्य लेख लिखने के सिलसिले ने ग्रेजुएशन के दौरान कब एक बड़े क्षेत्रीय दैनिक के रिपोर्टिंग विभाग, फिर संपादकीय में पहुंचा दिया, पता नहीं चला। तब की स्थापित समाचार एजेंसियों के छक्के छुड़ा देने वाली बहुभाषी समाचार एजेंसी हिंदुस्तान समाचार के लिए समाचार प्रेषण भी साथ-साथ चला। दैनिक 'युगधर्म' रायपुर से निकलकर 'जनसत्ता' की शुरुआत के लिए दिल्ली पहुंचने में लिखित परीक्षा और इंटरव्यू काम आया। उस दौर में सिफारिश का अकाल था और संपादक भी उसे हेय मानते थे। दिवंगत प्रभाष जोशी जैसे शानदार संपादक की अगुआई और एक उतनी ही शानदार टीम का 'जनसत्ता' देश की हतबल हो चली दैनिक समाचार पत्रों की सत्ता में एक क्रांति ही था। 'जनसत्ता' ने हिंदी पत्रकारिता का नया मुहावरा गढ़ा। प्रयोगधर्मिता, देशज शब्दावली, वर्तनी का पालन, रोजमर्रा के बोलचाल की भाषा, फीचरों के जरिए विस्तृत विश्लेषण, खबर को वास्तव में प्रतिबिंबित करने वाले शीर्षक, नए स्तंभ, नए ढंग का आकर्षक ले-आउट और अन्याय करने वाले हर शक्तिशाली व्यक्ति, संस्था और सरकार के विरुद्ध संघर्ष की रणभेरी उसकी ऐसी खूबी थी, जो भारत के अखबारों में अब तक देखी नहीं गई थी। 'जनसत्ता' ने हिंदी अखबारों की न केवल दुनिया बदल दी, अपितु अंशकालिक संवाददाताओं से प्राप्त खोजी खबरों के स्तंभ ष्खोज खबरष् और विविध विषयों पर केंद्रित फीचरों के स्तंभ 'खास खबर' से तब की 'रविवार' जैसी प्रतिष्ठित समाचार पत्रिका समेत तमाम साप्ताहिक पत्रिकाओं को पसीने ला दिए। यह मात्र संयोग नहीं कि 'जनसत्ता' की अग्रिम पंक्ति के अधिकतर पत्रकारों ने कालांतर में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का संपादक पद विभूषित किया। 'जनसत्ता' भले प्रसार संख्या के मामले में पहला न था, लेकिन साख के मामले में उसका कोई पासंग भी न था। यह 'जनसत्ता' की साख ही थी कि जब मुख्यत: अंग्रेजी पत्रकारिता करने वाले इंडिया टुडे समूह ने अपनी फ्लैगशिप अंग्रेजी 'इंडिया टुडे' को हिंदी में निकालने का सोचा तो हिंदी 'इंडिया टुडे' चलाने के लिए उन्हें 'जनसत्ता' आना पड़ा। 'जनसत्ता' में खोजी खबरों तथा फीचर के पृष्ठों के संपादन के अनुभव से मुझे हिंदी 'इंडिया टुडे' को लॉन्च करने लायक मान लिया गयाण् नई पत्रिका की छोटी.सी संपादकीय टीम भी एक्सप्रेस बिल्डिंग से ही आई शुरू में महज अंग्रेजी 'इंडिया टुडे' के अनुवाद समूह के संपादकों का मत था कि उनकी अंग्रेजी रिपोर्टें, फीचर सर्वोत्तम होते हैं, जो कि वे थे भी। इसलिए सिर्फ बोलचाल

संपादकीय स्वतंत्रता के बजाय संपादकीय गुणवाा अधिक महत्वपूर्ण है। संपादक की साा का ह्रण का जहां दीर्घकालीन असर रहा है, वहीं सेशन एडीटर्स और विषय-विशेषज्ञ डोमेन एसपर्ट की नई जमात पैदा होने से पत्रकारिता समृद्ध भी हुई है। संपादकीय सामग्री के मामले में कई पत्र-पत्रिकाएं अब भी वांछित गहराई, स्वतंत्रचेतना तथा निष्पक्षता कमोबेश बरकरार रखे' हैं, लेकिन टीवी न्यूज में सतहीपन बढ़ा है। न तो प्रिंट और न ही टीवी न्यूज को अपने पत्रकारों की प्रोफेशन गुणवाा विकसित करने की चिंता है। लागत घटाने का पहला निशाना पत्रकार ही हैं और उसका प्रभाव संपादकीय सामग्री पर दिखता है। पत्रकारिता पढ़ाने वाले संस्थानों से कम वेतन पर मिलने वाले किताबी ज्ञानियों की मीडिया में बढ़ती संया ने इस कठिनाई को और बढ़ाया है। स्मार्टफोन और डिजिटल उपकरण पत्रकारिता का नया और प्रभावी माध्यम बन रहे हैं। ऐसे में पत्रकारिता को पुनर्परिभाषित करने की जरूरत है, तो पत्रकारों को स्वयं का पुनर्आविष्कार करने की...

की हिन्दी में अनुवाद से नई पत्रिका चल सकती है, लेकिन हिन्दी भारत का तो मिजाज ही अलग है! नतीजतन हिन्दी 'इंडिया टुडे' ने सिर्फ अनुवाद छोड़कर कब स्वतंत्र बाना धर लिया, उन्हें पता भी न चला। इस नई समाचार पत्रिका में 'इंडिया टुडे' की प्रोफेशनल गुणवत्ता और अनुशासन अलग दिखता था। हिन्दी 'इंडिया टुडे' ने समाचार पत्रिकाओं के जगत में नए किर्तिमान कायम किए और यह लगातार नंबर एक बनी रही। 5 लाख की प्रसार संख्या को छूने वाली यह देश की अकेली पत्रिका थी और अंग्रेजी इंडिया टुडे की तरह हिन्दी 'इंडिया टुडे' ने भी दूसरी पत्र-पत्रिकाओं को संपादक मुहैया कराए।

पत्रकारिता में किन परिवर्तनों को अधिक शिद्दत से महसूस करते हैं?

सबसे बड़ा परिवर्तन प्रौद्योगिकी के उन्नयन और नए आविष्कारों से आया है। इससे तेजी से पहुंच पत्रकारिता का नया मंत्र बन गई है। समाचारों-जानकारियों-सूचनाओं और विचारों-विश्लेषण के लिए इंटरनेट और सोशल नेटवर्किंग, माइक्रोब्लॉगिंग साइट्स और स्मार्टफोन प्लैटफॉर्म पर ऑडयंस, पाठक, दर्शक और श्रोता की बढ़ती निर्भरता ने प्रिंट तथा टीवी न्यूज को अपना अस्तित्व बचाने के लिए उन उपायों और तरीकों का सहारा लेने को विवश कर दिया है, जो पहले वर्जित और अनैतिक माने जाते थे। इससे मुख्यधारा के मीडिया की साख रसातल में है। विज्ञापनदाता पहले भी जरूरी थे, लेकिन तब उन्हें सिर पर बिठाने की नौबत नहीं आती थी। प्रतिद्वंद्वियों से स्पर्धा में बने रहने के लिए विस्तार और इंटरनेट की महाभयंकर चुनौती से पार पाने के लिए अधुनातन प्रौद्योगिकी अपनाने की विवशता के कारण बढ़ती लागत से विज्ञापन देने वाला हर ऐरा-गैरा संपादकीय नीति के सिर पर सवार है। इससे पत्रकारिता संस्थानों का कार्पोरटराइजेशन, न्यूज का व्यापारीकरण बढ़ गया। संपादकीय स्वतंत्रता के बजाय संपादकीय गुणवत्ता अधिक महत्वपूर्ण है। संपादक की सत्ता का ह्रण का जहां दीर्घकालीन असर रहा है, वहीं सेक्शन एडीटर्स और विषय-विशेषज्ञ डोमेन एक्सपर्ट की नई जमात पैदा होने से पत्रकारिता समृद्ध भी हुई है। संपादकीय सामग्री के मामले में कई पत्र-पत्रिकाएं अब भी वांछित गहराई, स्वतंत्रचेतना तथा निष्पक्षता कमोबेश बरकरार रखे' हैं, लेकिन टीवी न्यूज में सतहीपन बढ़ा है। न तो प्रिंट और न ही टीवी न्यूज को अपने पत्रकारों की प्रोफेशन गुणवत्ता विकसित करने की चिंता है। लागत घटाने का पहला निशाना पत्रकार ही हैं और उसका प्रभाव संपादकीय सामग्री पर दिखता है। पत्रकारिता पढ़ाने वाले संस्थानों से कम वेतन पर मिलने वाले किताबी ज्ञानियों की मीडिया में बढ़ती संख्या ने इस कठिनाई को और बढ़ाया है। स्मार्टफोन और डिजिटल उपकरण पत्रकारिता का नया और प्रभावी माध्यम बन रहे हैं। ऐसे में पत्रकारिता को पुनर्परिभाषित करने की जरूरत है, तो पत्रकारों को स्वयं का पुनर्आविष्कार करने की।

एक समाचार पत्रिका की पत्रकारिता की खूबियों को कैसे परिभाषित करेंगे। या खामी महसूस होती है ?

परंपरागत समाचार पत्रिका की खूबियों की बात करना अब व्यर्थ है। दुनिया भर के, भारत समेत, पाठक सर्वेक्षण बताते हैं कि समाचार पत्रिकाएं इंटरनेट की सबसे बड़ी शिकार बनी हैं। गत सप्ताह या पिछले पखवाड़े के समाचारों, घटनाओं, विचारों आदि का ओजपूर्ण या लावण्यमयी भाषा में क्रमवार, निष्पक्ष तथा खोजपूर्ण विश्लेषण और उनके बारे में अपनी ओर से निष्कर्ष सुझाते हुए पाठक को स्वयं निर्णय करने के लिए प्रवृत्त करने की पत्रिका-परंपरा को ब्लॉग, माइक्रोब्लॉग्स और सोशल नेटवर्क के दूसरे मंचों ने ध्वस्त कर दिया है। राजनैतिक-सामाजिक विश्लेषण, विषय-विशेष पर अध्ययनपूर्ण फीचर और समकालीन घटनाओं की विस्तृत रिपोर्टें भी अब उनका विशेषाधिकार नहीं रह गई हैं। दुनिया भर में समाचार पत्रिकाएं रोजमर्रा के विषय भूलकर अब डाटा जर्नलिज्म की तरफ रुख कर रही हैं, जो खोजी पत्रकारिता का अगला पड़ाव है। जांचे-परखे, अकाट्य तथ्य, अधिक गहराई और सोचने के लिए विवश करने वाला विश्लेषण इसकी खूबी है। विषय केंद्रित मीडिया इसका साधन है, लेकिन यह खर्चीला और समयसाध्य है। कोई एक रिपोर्ट या विश्लेषण करने में कई महीने और लाखों रुपए लग सकते हैं और यह खर्च करने की न तो प्रकाशनों की कूव्वत है और न ही इच्छा!

आप जिस समूह की पत्रिका से जुड़े रहे, वह क्रॉस मीडिया ओवनरशिप का एक बड़ा उदाहरण है, आप इस समस्या को कैसे देखते हैं ?

यह सही है कि मैं जिस समूह की पत्रिका में 26 वर्ष रहा, वह आज क्रॉस मीडिया ओनरशिप का एक बड़ा उदाहरण है। 1986 में जब हमने हिन्दी 'इंडिया टुडे' शुरू की थी, तब ऐसा नहीं था। कुछ समाचार पत्रिकाओं और स्पेशलाइज्ड मैगजीन के अलावा एक साप्ताहिक टीवी न्यूज पत्रिका जरूर थी, जो बाद में पूर्ण न्यूज चैनल बनी, लेकिन सबकी सामग्री, फोकस अलग था। कोई एक संपादकीय नियंत्रण भी नहीं था। आज क्रॉस मीडिया ओनरशिप निष्पक्ष और भरोसेमंद पत्रकारिता के लिए खतरनाक इसलिए लगती है, क्योंकि एक तो इसमें कार्पोरेट घरानों का स्वामित्व

बढ़ा है, दूसरे परंपरागत मीडिया समूह कार्पोरेटाइजेशन की तरफ जा रहे हैं। प्रिंट, टीवी और वेब पोर्टलों पर इनके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष नियंत्रण से सरकारी नीतियों-निर्णयों को स्थायी रूप से और जनमत को तात्कालिक रूप से प्रभावित करने की ताकत बढ़ी है। अपने व्यापारिक हित साधने तथा व्यावसायिक प्रतिद्वंद्वी को सबक सिखाने के लिए मीडिया का उपयोग भी इससे बढ़ा है। मीडिया में विदेशी निवेश की वकालत करने वाले भी इन्हीं में हैं। इससे मुख्यधारा के मीडिया की चाल-ढाल और चरित्र बदलने का संकट दिखता तो है। लेकिन जिस तरह प्रिंट-टीवी न्यूज चैनलों का न्यूज इको सिस्टम कुछ शतकों तक समाचार-विचार देने के एकाधिकार से स्थापित हुआ, लेकिन जो 45 वर्ष पहले इंटरनेट तथा 25 वर्ष पहले 222 के आने के बाद ऑडियंस को चुनने की आजादी मिलते ही विच्छिन्न हो गया, उसी तरह क्रॉस-मीडिया ओनरशिप से उत्पन्न एकाधिकारी मीडिया को भी वेब क्रांति पलीता लगा सकती है। बस, सरकार इंटरनेट पर कोई अवांछित पाबंदी न थोपे। इसके साथ ही सरकार को नया प्रेस आयोग भी बनाना चाहिए जो मीडिया के इस विचलन पर विचार करे और इसे रोकने के तरीके सुझाए।

मीडिया विशेषज्ञ मानते हैं कि 2014 के चुनावों ने मीडिया के बीच एक स्पष्ट रेखा खींच दी, जो काफी तीखी भी है। इसके कारण एक मीडिया समूह एक दूसरे का निशाना बना रहे हैं। आप इस आकलन से कितने सहमत हैं ?

विभाजन रेखाएं मुख्यधारा के मीडिया में पहले भी थीं, लेकिन इतनी प्रखर नहीं थीं, जितनी 2014 के लोकसभा चुनाव हुईं और ऐसा इसलिए कि नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री पद के दावेदार थे, जिन्हें राष्ट्रीय, पढ़ें, दिल्ली-मुंबई के मीडिया के तथाकथित सेक्यूलर वर्ग ने पत्रकारीय नैतिकता को ताक पर धरकर वर्षों तक अपने मिथ्या प्रचार से देश-दुनिया में बतौर विलेन चित्रित कर रखा था। गुजरात में डेढ़ दशक के अपने शासन को समूचे देश के लिए एक मिसाल बना देने वाले मोदी का चुनाव से पहले ही देश के जनमानस पर छा जाना फर्जी मानवाधिकारवादियों, राजनैतिक विरोधियों, पश्चिमी लॉबिस्टों, ड्राइंगरूम-मार्का उदारवादियों के लिए असहनीय था। इसलिए मीडिया के इस खास तबके ने उन्हें रोकने की कोशिश में कोई कसर नहीं छोड़ी। लेकिन मीडिया के दूसरे तबके को देश में मोदी की बढ़ती स्वीकार्यता साफ दिख रही थी। हर मीडिया का ब्रेड-बटर तो उसका अपना ऑडियंस ही है। यह ऑडियंस देश भर में मोदी के साथ जा रहा था तो उसी ऑडियंस के दम पर कमाई करने वाला मीडिया कैसे पीछे रहता। मीडिया का एक वर्ग ऐसा भी है जो उगते सूरज को प्रणाम करने में अपनी भलाई देखता है। इसका बिछ जाना अस्वाभाविक नहीं था। फिर न्यूज चैनलों में अपना दर्शक वर्ग और उनके बूते अपनी कमाई बचाए रखने की गलाकाट होड़ भी है जो विभाजक रेखा को और गहरा करती है। लेकिन इस मीडिया का मोटा स्वरूप उसकी भेड़चाल से अधिक प्रकट होता है।

इलेट्रॉनिक मीडिया में मुद्दों को लेकर बदहवासी दिखती है। हांफना-चिल्लाना एक चरित्र बनता जा रहा है। नेपाल में आए भूकंप के दौरान मीडिया के इस रुख की काफी आलोचना भी हुई। आप इस परिघटना को कैसे देखते हैं ?

न्यूज चैनलों में बदहवासी जैसे हालात की बात ऊपर आ गई है। दूसरे से आगे रहने की ऐसी ललक है कि पत्रकारिता के सामान्य नियमों को भी तिलांजलि दे दी जाती है। वास्तविकता यह है कि मात्र चार प्रमुख न्यूज चैनल कुल टीवी दर्शक संख्या के 15 से लेकर 18 प्रतिशत तक ही पहुंच बना पाए हैं। ऐसे में दूसरे से किसी भी तरह आगे रहने की अंधी होड़ है। नेपाल की त्रासदी को भारतीय टीवी दर्शकों के लिए भुनाने का नेपाल के लोगों पर ऐसा उलटा असर हुआ कि महज दो दिनों में ट्विटर पर दुनिया भर के नेपालियों ने
सत्रशक्कष्ध्नद्धठ्ठस्रद्धड्डठ्ठरूद्गस्रद्धड्डत्रशक्कष्ध्न के साथ 60,000 से अधिक ट्विट कर भारतीय मीडिया कर्मियों को नेपाल से बोरिया-बिस्तर बांधने के लिए विवश कर दिया। नए न्यूज चैनलों को लाइसेंस मिलने के साथ ही यह बदहवासी और बढ़ने वाली है। चूंकि गिने-चुने चैनलों को छोड़कर अधिकतर का रेवेन्यू बेस कमजोर है, इसलिए वे जमीनी रिपोर्टिंग में लगने वाली लागत बर्दाश्त नहीं कर सकते। इससे स्टुडियो आधारित कार्यक्रमों, पैनल डिस्कशन, लाइब्रेरी में पड़े पुराने फुटेज तथा विदेशी चैनलों के फुटेज के सहारे प्रोग्रामों की पैकेजिंग के साथ सनसनीखेज खबरों का दोहराव, मात्र आरोपों-अफवाहों पर मीडिया ट्रायल, लोगों के निजी जीवन में तांकझांक के किस्से, फिल्मी तथा मनोरंजन चैनलों के कार्यक्रमों के अंश, उनके कलाकारों की पार्टियों-नए लॉन्च के मुफ्त में मिलने वाले शूट और इंटरव्यू के नाम पर नेताओं के भाषण रात 12 बजे तक चलाते रहने की परंपरा और मजबूत होगी। और 24×7 वाला तमगा लगाए रखने के लिए मध्यरात्रि से भुगतानशुदा विज्ञापनों के कार्यक्रम तो चलेंगे ही।

भारतीय संदर्भों में पत्रकारिता के लिए तीन प्रमुख लक्ष्य या होने चाहिए ?

व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिए संवेदनशीलता के साथ निष्पक्ष, स्वतंत्र और विश्वसनीय समाचार तथा विचार, नयापन, जिसके डीएनए में हो। इस धरती से लेकर अंतरिक्ष और धरती के नीचे, भू-गर्भ तक समस्त चराचर पत्रकारिता का विषय है, होना ही चाहिए। समाज और राष्ट्र के मूल चरित्र, स्वभाव तथा उसके जीवन मूल्यों से पत्रकारिता की सुसंगति होनी चाहिए। अच्छाइयां कैसे रुचिकर ढंग से सामने लाई जाएं और विद्रूपताएं किस तरह जिम्मेदारी और संवेदनशीलता से उघाड़ी जाएं? जो घट रहा है, उसे या ऑडियंस को पसंद आए महज उसे रिपोर्ट करने तक सीमित रहने के बजाय नए, उपयोगी और गंभीर विषयों में दिलचस्पियां कैसे जगाई जाए? दुनिया भर में मुख्यधारा का परंपरागत मीडिया अपने समाज और राष्ट्र से अलग दिखने के बजाय अपने ऑडियंस से जुड़ने उसका अभिन्न अंग बनने की जद्दोजहद में लगा है, ताकि उसके लिए इतना उपयोगी और भरोसेमंद साबित हो सके कि समाज अपनी स्टोरीज उसके साथ बेझिझक शेयर करे। भारत में भी यही आवश्यकता है।

पत्रकारिता शिक्षण में कौन सी प्रमुख खामियां आपके ध्यान में आती हैं ?

पत्रकारिता शिक्षण मुख्यत: किताबी है, वास्तविकता से दूर है और अध्यापन करने वाले डिग्रीधारी शिक्षक हैं, जिन्हें पत्रकारिता का क ख ग भी नहीं मालूम। इस मेल से पत्रकारिता के लिए महज क्लर्क या वर्कर तैयार हो रहे हैं, न्यूज सेंस रखने वाले पत्रकार नहीं।

पत्रकारिता मीडियाकर प्रतिभाओं का क्षेत्र है, समय-समय पर कुछ तथाकथित विद्वान यह उपदेश देते रहते हैं, या यह सही है। पत्रकारिता के क्षेत्र में अच्छी प्रतिभाओं को आकर्षित करने के लिए या किया जाना चाहिए ?

पत्रकारिता एक विशिष्ट कला है। आजीवन बालसुलभ उत्सुकता, किसी नई बात या तथ्य की सटीक-सहज अभिव्यक्ति का गुण और सही-गलत की पक्की समझ अंतर्निहित हो सकती है और अभ्यास से भी पाई जा सकती है। स्वामी विवेकानंद का प्रसिद्ध कथन है, 'जीवन का एक लक्ष्य तय करो और फिर उसके लिए स्वयं को झोंक दो। यह चिंता मत करो कि जीवन का पांसा किस ओर पड़ेगा। प्रोफेशनल लोग ऐसे ही होते हैं। पत्रकारिता भी प्रोफेशन है। और यह सत्य की खोज का, नए प्रयोगों का मार्ग है इसलिए कठिन है और वैज्ञानिक दृष्टि की मांग करता है। प्रतिभाओं को इसमें आकर्षित करने के लिए मात्र मोटा वेतन पर्याप्त नहीं है। अंग्रेजी में जिसे 'टाइम एंड स्पेस' कहा जाता है, वह अगर न हो तो रचनाधर्मिता खिल नहीं सकती और एक सच्चा पत्रकार घुटन महसूस करने लगता है। प्रतिभाएं होते हुए भी उनका यथोचित उपयोग नहीं करना भी ठीक नहीं। अपने स्वरूप, संसाधन और ऑडियंस की प्रकृति के हिसाब से पत्रकारों की प्रोफेशनल गुणवत्ता बढ़ाने पर ध्यान देने वाले मीडिया घरानों को प्रतिभाओं का अकाल नहीं है।

नए पत्रकारों को पत्रकारिता के किन मूल्यों को ध्यान में रखकर पत्रकारिता करनी चाहिए?

नएपन और उपादेयता की सर्वोत्तम प्रस्तुति जिसके अंतर्निहित गुण हों-निष्पक्षता, स्वतंत्रता और विश्वसनीयता।

दर्शकों से दूर दूरदर्शन

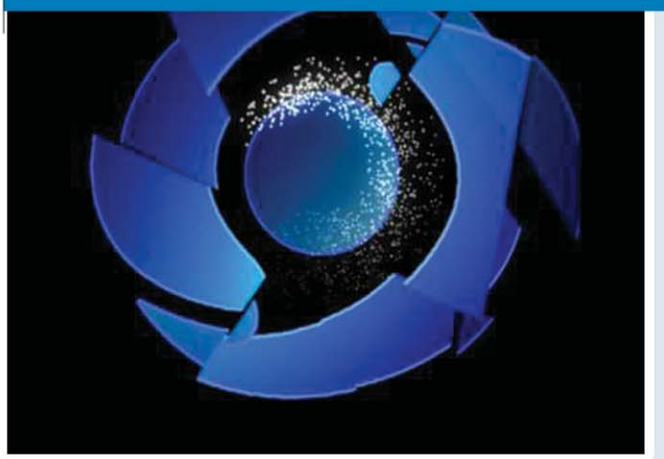

— दीपक कुमार

आईसीसी क्रिकेट वर्ल्ड कप के दौरान भारत, दक्षिण अफ्रीका के मुकाबले के बीच अचानक एक युवा ने ट्वीट किया, अब दूरदर्शन पर मैच देखने में मजा नहीं आया। असल मजा तो स्टार स्पोर्ट्स पर अख्तर और कपिल देव की बकबक सुनने में आता है, वो भी हिंदी में। यूं तो यह एक मजाकिया ट्वीट था, लेकिन इस ट्वीट ने दूरदर्शन की नीरसता और स्टार स्पोर्ट्स के प्रति लोगों के बढ़ते रुझान को बखूबी जाहिर कर दिया। दरअसल, दूरदर्शन ने क्रिकेट विश्वकप-2015 के दौरान भारत के सभी मैचों का प्रसारण किया। दूरदर्शन को यह अधिकार तब मिला, जब प्रसार भारती ने देश के सर्वोच्च अदालत का दरवाजा खटखटाया। प्रसार भारती की दर्शकों के लिए लंबी लड़ाई के बावजूद विश्वकप के दौरान दूरदर्शन के प्रति उनकी उदासीनता ने गंभीर सवाल खड़ा कर दिया। सवाल यह कि क्या दूरदर्शन दर्शकों के नब्ज को पहचान पाने में नाकाम है या फिर सरकारी ढर्रे में चलने का आदी है? यह सच है कि जब एक तरफ स्टार स्पोर्ट्स नए-नए प्रयोगों से खुद को दर्शकों के पसंद से अपडेट कर रहा है, वहीं दूरदर्शन उसी पुराने ढर्रे पर चल रहा है। अगर इसी विश्वकप की बात की जाए तो स्टार ने क्रिकेट की सर्वोत्तम प्रस्तुति, व्यापक कवरेज, कई भाषाओं में पेशकश और दर्शकों के अनुभव को नया रूप देते हुए उसे खेल में गहराई तक ले जाने का प्रयास किया। वहीं दूरदर्शन पर घिसे-पिटे तरीके से कमेंट्री सुनने को मिली और गेस्ट पैनल में गुमनाम चेहरों को बिठा दिया गया। हद तो तब हो गई जब कमेंट्री में हिंदी और अंग्रेजी का मिश्रण देखने को मिला। सवाल यह है कि जब विदेशी व्यक्ति हिंदी भाषा को तवज्जो देते हुए एक नया चैनल खड़ा कर सकता है, तो फिर देसी कलेवर के दूरदर्शन को हिंदी से परहेज क्यों है? हिंदी पट्टी के क्षेत्रों में किसी न किसी रूप में दूरदर्शन का वर्चस्व है, फिर भी सरकार की पनाह में पल रहे इस चैनल की दर्शकों के प्रति उदासीनता क्यों है? स्टार ने इस खेल आयोजन के लिए बहुत सारे नवाचार अपनाए। उसने लीक से हटकर 'मौका' अभियान चलाया जो मैदान में क्रिकेट से आगे चला गया और प्रशंसकों के जुनून का अनोखा उपयोग किया। यह अभियान जबरदस्त गति से बढ़ता हुआ। यह विज्ञापन ऑनलाइन 1.7 करोड़ से ज्यादा व्यूज को पार कर गया। स्टार के इस बार नए लुक के ग्राफिक्स तैयार किए गए । दुनिया में पहली बार क्रिकेट को किसी अन्य शहर-मुंबई में बैठकर होलोग्राम तकनीक में पेश किया गया और कमेंट्री पैनल में सर्वश्रेष्ठ विशेषज्ञ बिठाए गए। इसमें 13 विश्व कप के कप्तान, 20 विश्व कप विजेता और 26 विश्व कप सेमी फाइनलिस्ट खिलाड़ी थे। स्टार ने भारतीय सिनेमा की सर्वोत्तम आवाज और हिंदी भाषा के जानकार, अमिताभ बच्चन की भी सेवा ली। उन्होंने भारत के सबसे बड़े खेल में बतौर कमेंटेटर शुरुआत की। उन्हें भारत-पाकिस्तान मैच के लिए कपिल देव, शोएब अख्तर, राहुल द्रविड़ व संजय मांजेरकर को लेकर बने स्टार स्पोर्ट्स पैनल में शामिल किया गया। इसके अलावा यूथ आइकन बन चुके रणबीर कपूर को भी कमेंट्री करने का मौका मिला। एक आंकड़े के मुताबिक इस समय देश में करीब 40 लाख घरों के पास एचडी कनेक्शन है। इसके मद्देनजर स्टार स्पोर्ट्स ने विश्व कप के मैचों का प्रसारण भारत में स्पोर्ट्स के पहले संपूर्ण हिंदी एचडी चैनल, स्पोर्ट्स एचडी तीन समेत चार एचडी चैनलों के नेटवर्क पर किया। अगर दर्शकों की पसंद की बात की जाए तो वहां भी दूरदर्शन पर स्टार हावी है। टूर्नामेंट के आधिकारिक ब्रॉडकास्टर के मुताबिक, भारत-पाकिस्तान के मैच को स्टार नेटवर्क पर 11.9 टीवीआर (टेलीविजन व्यूअर रेटिंग) मिले, जबकि दूरदर्शन को 2.9 टीवीआर हासिल हुए। भारत-पाकिस्तान मैच ने शीर्ष के छह महानगरों में 17.2 की टीवीआर और 10 लाख से ज्यादा आबादी के शहरों में 15.5 की टीवीआर हासिल की। ब्रॉडकास्टर का यह भी दावा है कि 28.8 करोड़ दर्शकों ने स्टार के नए-नए प्रयोगों से मैच को देखने की पहल की। 2011 में क्रिकेट विश्व कप के फाइनल के बाद से यह मैच पिछले चार सालों में भारत में टेलीविजन पर सबसे ज्यादा देखा गया इवेंट है। खेल को 76 प्रतिशत दर्शक हिंदी व क्षेत्रीय भाषाओं की फीड से मिले और बाकी 24 प्रतिशत दर्शक अंग्रेजी से मिले। इसने स्टार द्वारा शुरू की गई बहुभाषी रणनीति को सही साबित किया। इस मैच ने स्टार के डिजिटल प्लेटफार्मों पर 2.5 करोड़ से ज्यादा व्यूज हासिल करके दुनिया में नया इतिहास रचा। यह सारी दुनिया में अभी तक एक दिन में किसी भी स्पोर्ट्स इवेंट को मिले सबसे ज्यादा व्यूज हैं। भारत-पाकिस्तान मुकाबले ने भारत में सोशल मीडिया पर भी जबरदस्त धमाल मचाया और उसे तीन अरब हिट्स या फीड मिले। दिलचस्प बात यह है कि इन आंकड़ों में दूरदर्शन दूर-दूर तक कहीं नहीं है। दूरदर्शन की ओर से दर्शकों के लिए न कोई विज्ञापन किए गए और न ही किसी तरह के प्रयोग। तो फिर दर्शकों का रुझान स्टार की ओर क्यों न बढ़े?

दूरदर्शन ने क्रिकेट विश्वकप-2015 के दौरान भारत के सभी मैचों का प्रसारण किया। दूरदर्शन को यह अधिकार तब मिला जब प्रसार भारती ने देश के सर्वोच्च अदालत का दरवाजा खटखटाया। प्रसार भारती की दर्शकों के लिए लंबी लड़ाई के बावजूद विश्वकप के दौरान दूरदर्शन के प्रति उनकी उदासीनता ने गंभीर सवाल खड़ा कर दिया। सवाल यह कि या दूरदर्शन दर्शकों की नज को पहचान पाने में नाकाम है या फिर सरकारी ढर्रे में चलने का आदी है? यह सच है कि जब एक तरफ स्टार स्पोर्ट्स नए-नए प्रयोगों से खुद को दर्शकों की पसंद से अपडेट कर रहा है, वहीं दूरदर्शन उसी पुराने ढर्रे पर चल रहा है...

कर्मयोगी पत्रकार: माधवराव सप्रे

सन् 1916 में जबलपुर के सातवें अखिल भारतीय हिन्दी समेलन में उन्होंने पहली बार देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने संबंधी प्रस्ताव रखा। पत्र-पत्रिका प्रकाशन व संपादन की इच्छा सदैव इनके साथ रही। इसी क्रम में मित्रों के अनुरोध एवं पत्रकारिता के जज्बे के कारण 1919-20 में पं. माधवराव सप्रे जी जबलपुर आ गए और 'कर्मवीर' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया, जिसके संपादक पं. माखन लाल चतुर्वेदी जी बनाए गए। 'कर्मवीर' का प्रकाशन सफल रहा और वे जबलपुर में हिन्दी साहित्य की बगिया महकाने में अपने अंतिम प्रयाण अनवरत जुटे रहे...

जीवन की प्रतिकूल व जटिल परिस्थितियों की आंच पर जब कोई जीवन निरंतर तपता है तो एक महान व्यक्तित्व का जन्म होता है। ऐसे ही विराट व्यक्तित्व के मालिक थे माधवराव सप्रे। तमाम अभावों व चुनौतियों से परिपूर्ण माधवराव जी के जीवन का यह सफर इतना सरल नहीं था। फिर भी दृढ़ इच्छाशक्ति और आत्मविश्वास ने हौसले को कमजोर नहीं पड़ने दिया। राष्ट्रभाषा हिन्दी के उन्नायक, प्रखर चिंतक, मनीषी संपादक, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और सार्वजनिक कार्यों के लिए समर्पित कार्यकर्ताओं की शृंखला तैयार करने वाले प्रेरक-मार्गदर्शक-गुरु कर्मयोगी पं. माधवराव सप्रे का कृतित्व और अवदान कालजयी है।

19 जून, 1871 को मध्य प्रदेश के दमोह जिला के ग्राम पथरिया में जन्मे पं. माधवराव सप्रे जी का संपूर्ण जीवन अभावग्रस्त एवं संघर्षमय रहा। पढ़ाई में कुशाग्र बालक माधवराव को आरंभ से ही छात्रवृत्ति प्राप्त होने लगी थी। रायपुर में अध्ययन के दौरान पं. माधवराव सप्रे, पं. नंदलाल दुबे जी के संपर्क में आए जो इनके शिक्षक थे एवं जिन्होंने अभिज्ञान शाकुन्तलम और उत्तर रामचरित मानस का हिन्दी में अनुवाद किया था व उद्यान मालिनी नामक मौलिक ग्रंथ भी लिखा था। पं. नंदलाल दुबे नें ही पं. माधवराव सप्रे के मन में साहित्तिक अभिरुचि जगाई, जिसने कालांतर में पं. माधवराव सप्रे को 'छत्तीसगछ मित्र' व ' हिन्दी केसरी' जैसी पत्रिकाओं के संपादक के रूप में प्रतिष्ठित किया। एक दौर ऐसा भी आया जब अन्होंने नायब तहसीलदार की नौकरी को ठुकराकर अपने कर्मपथ की ओर बढ़ना पसंद किया। समाज सुधार व हिन्दी सेवा के जज्बे ने इनके मन में पत्र-पत्रिका के प्रकाशन की रुचि जगाई और मित्र वामन लाखे के सहयोग से 'छत्तीसगढ़ मित्र' मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया, जिसकी ख्याति पूरे देश भर में फैल गई। हिंदी के भी वह परम पैरोकार थे। हृदय व कर्म में हिंदी के प्रति श्रद्धाभाव ऐसा कि मराठी भाषी होने के बावजूद इन्होंने हिन्दी के विकास के लिए सतत् कार्य किया।

सन् 1905 में हिन्दी ग्रंथ प्रकाशक मंडल का गठन कर तत्कालीन विद्वानों के हिन्दी की उत्कृष्ट रचनाओं व लेखों का प्रकाशन धारावाहिक ग्रंथमाला के रूप में आरंभ किया। लिहाजा हिंदी के प्रचार-प्रसार के नजरिए से एक अनूठी पहल थी। इस ग्रंथमाला में पं. माधवराव सप्रे जी के मौलिक स्वदेशी आन्दोलन एवं बायकाट लेखमाला का भी प्रकाशन हुआ। बाद में इस ग्रंथमाला का प्रकाशन पुस्तकाकार रूप में हुआ। हालांकि अंग्रेजी हुकमरानों को हिंदी का फैलता आधार कभी रास नहीं आया और इस ग्रंथमाला की लोकप्रियता को देखते हुए अंग्रेज सरकार नें सन् 1909 में इसे प्रतिबंधित कर प्रकाशित पुस्तकों को जब्त कर लिया। हिन्दी ग्रंथमाला के प्रकाशन से राष्ट्रव्यापी पहचान बनाने के बाद पं. माधवराव सप्रे नें लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक से अनुमति प्राप्त कर उनकी आमुख पत्रिका मराठा केसरी के अनुरूप 'हिन्दी केसरी' का प्रकाशन 13 अप्रैल, 1907 को प्रारंभ किया।

हिन्दी केसरी अपने स्वाभाविक उग्र तेवरों से प्रकाशित होता था, जिसमें अंग्रेजी सरकार की दमन नीति, कालापानी, देश का दुर्दैव, बम के गोले का रहस्य जैसे उत्तेजक लेख प्रकाशित होते थे। फलत: 22 अगस्त 1908 में पं. माधवराव सप्रे जी गिरफ्तार कर लिए गए। तब तक सप्रे जी अपनी केंद्रीय भूमिका में एक प्रखर पत्रकार के रूप में संपूर्ण देश में स्थापित हो चुके थे। इस बीच वे रायपुर में समर्थ रामदास के दास बोध, गीता रहस्य, महाभारत मीमांसा का हिन्दी अनुवाद भी किया और रायपुर में ही रह कर शिक्षा व लेखन कार्य करते रहे। साहित्य के प्रति उनकी रुचि जीवंत रही। उन्होंने देहरादून में आयोजित 15वें अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता भी की एवं अपनी प्रेरणा से जबलपुर में राष्ट्रीय हिन्दी मंदिर की स्थापना करवाई जिसके सहयोग से 'छात्र सहोदर', 'तिलक', हितकारिणी', 'श्री शारदा' जैसे हिन्दी साहित्य की महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं का प्रकाशन संभव हुआ, जिनका आज तक महत्त्व विद्यमान है। 1924 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के देहरादून अधिवेशन में सभापति रहे सप्रे जी ने 1921 में रायपुर में राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना की और साथ ही रायपुर में ही पहले कन्या विद्यालय जानकी देवी महिला पाठशाला की भी स्थापना की। ये दोनों विद्यालय आज भी चल रहे हैं। सप्रे जी का यह स्मरणीय कथन : 'मैं महाराष्ट्री हूं पर हिंदी के विषय में मुझे उतना ही अभिमान है, जितना कि किसी हिंदीभाषी को हो सकता है।'

सन् 1916 में जबलपुर के सातवें अखिल भारतीय हिन्दी सम्मेलन में उन्होंने पहली बार देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने संबंधी प्रस्ताव रखा। पत्र-पत्रिका प्रकाशन व संपादन की इच्छा सदैव इनके साथ रही। इसी क्रम में मित्रों के अनुरोध एवं पत्रकारिता के जज्बे के कारण 1919-20 में पं. माधवराव सप्रे जी जबलपुर आ गए और 'कर्मवीर' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया, जिसके संपादक पं. माखन लाल चतुर्वेदी जी बनाए गए । 'कर्मेवीर' का प्रकाशन सफल रहा और वे जबलपुर में हिन्दी साहित्य की बगिया महकाने में अपने अंतिम प्रयाण अनवरत जुटे रहे। हिंदी के इस पहले कहानीकार का निधन 26 अप्रैल, 1926 को हो गया।

मुखौटों को चेहरा बताने की ग्रासदी

श्रीनगर में कुछ अलगाववादी एवं राष्ट्रविरोधि शक्तियों द्वारा पाकिस्तान का झंडा फहराए जाने और भारत विराधी नारे लगाए जाने की घटना को पूरे देश एवं विदेश की मीडिया ने ऐसे प्रस्तुत किया, मानों वह जम्मू-कश्मीर की वास्तविक परिस्थिति है और पूरे राज्य के लोग भारत विरोधी हैं। पूरे दिन भर राष्ट्रीय चैनलों पर उस भारत विरोधी प्रदर्शन एवं पाकिस्तान का झंडा फहराए जाने के दृश्य को दिखाने का उद्देश्य समझ में नहीं आया। हद तो तब हो गई जब राष्ट्रीय चैनल प्रदर्शन के साथ-साथ मसर्रत आलम जैसे अलगाववादी की प्रतिक्रिया को बार-बार दिखा रहे थे। साथ ही कुछ चैनलों के रिर्पोटर तो एक और अलगाववादी आसीया अंदराबी के घर के बाहर उसकी प्रतिक्रिया लेने पहुंच गए, मानो यही लोग पूरे राज्य का प्रतिनिधित्व करते हों। इस पूरी घटना पर राज्य के या देश के किसी भी राष्ट्रवादी व्यक्ति की कोई टिप्पणी नहीं दिखाई गई।

हद तो तब हुई जब राष्ट्रीय चैनल प्रदर्शन के साथ-साथ मसर्रत आलम जैसे अलगाववादी की प्रतिक्रिया को बार-बार दिखा रहे थे। साथ ही कुछ चैनलों के रिर्पोटर तो एक और अलगाववादी आसीया अंदराबी के घर के बाहर उसकी प्रतिक्रिया लेने पहुंच गए, मानो यही लोग पूरे राज्य का प्रतिनिधित्व करते हों। इस पूरी घटना पर राज्य के या देश के किसी भी राष्ट्रवादी व्यक्ति की कोई टिप्पणी नहीं दिखाई गई...

अंतरराष्ट्रीय मीडिया तो निजी हितों के चलते ऐसे प्रदर्शनों को पूरे राज्य की स्थिति बताने का प्रयास तो करती ही है, परन्तु राष्ट्रीय मीडिया का ऐसा कौन सा हित आ गया कि उन्होंने दिन-भर यह घटना दिखा कर ऐसे आतंकियों को मंच देने का काम किया। यहां पर यह बात कहनी भी आवश्यक होगी कि ऐसा पहली दफा नहीं हुआ है कि मीडिया ने राज्य में बड़ी मात्रा में मौजूद राष्ट्रवादी शक्तियों की उपेक्षा कर अलगाववादियों को राज्य के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मीडिया में जम्मू-कश्मीर राज्य पर जब भी चर्चा होती है, तो गिलानी, मीरवाईज, यासिन मलिक एवं शब्बीर शाह जैसे अलगाववादियों को मंच दिया जाता है या उनकी प्रतिक्रिया ली जाती है। अब प्रश्न यह उठता है कि इन लोगों को राज्य की स्थितियों पर चर्चा करने का अधिकार किस तौर पर दिया जाता है? घाटी के पांच जिलों को छोड़ पूरे राज्य के लोग इन्हें नहीं मानते। जिस राज्य का प्रतिनिधि बनाकर मीडिया और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर इन्हें पेश किया जाता है, उसी राज्य के जम्मू व लद्दाख संभाग में यह लोग घुसने की हिम्मत तक नहीं करते। इन क्षेत्रों में राज्य की 65 फीसदी से अधिक जनसंख्या रहती है। इन लोगों का प्रतिनिधित्व तो अलगाववादी निश्चित तौर पर नहीं करते। वहीं घाटी में भी पांच जिलों में कुछ भटके हुए लोगों को छोड़ इन्हें कोई नहीं मानता। यह अलगाववादी राज्य के मुस्लिमों का भी प्रतिनिधित्व नहीं करते। राज्य

राज्य में राष्ट्रवादी शक्तियां अलगाववादी शक्तियों से ज्यादा प्रखर और बहुत अधिक मात्रा में हैं। यदि इस घटना का ही उदाहरण लें तो मीडीया ने यह तो दिखा दिया के श्रीनगर के एक चौक में पाकिस्तान का झंडा फहराया गया और भारत विरोधी नारे लगाए गए। लेकिन उसके बाद पूरे राज्य में कई दिनों तक अलगाववादियों के पुतले और पाकिस्तान के झंडे जलाए और भारत माता की जय के नारे लगाए गए। केवल कुछ आतंकियों द्वारा पाकिस्तान का झंडा फहराने की घटना यदि पूरे दिन चैनलों में चल सकता है, तो जब उसी राज्य में सैकड़ों स्थानों पर पाकिस्तान का झंडा जलाया गया तो उस दृश्य को भी एक घंटा तो चलाया ही जा सकता था...

में बड़ी मात्रा में रहने वाले शिया मुस्लिम, गुज्जर-बक्करवाल, पहाड़ी मुस्लिमों में से कोई भी अलगाववादी नेता नहीं है और न ही इन समुदायों में से कोई अलगाववादी समर्थक है। वहीं कारगिल में बसने वाली 90 फीसदी जनसंख्या मुस्लिम है और वहां कभी कोई अलगाववादी गतिविधि नहीं होती और न ही इन अलगाववादियों का कभी समर्थन किया जाता है। राज्य की अधिकांश मुस्लिम जनसंख्या पूर्णतया राष्ट्रवादी है और इन अलगाववादियों को अपना नेता या प्रतिनिधि नहीं मानती।

जम्मू-कश्मीर राज्य बहुत बड़ा है और केवल कश्मीर घाटी ही पूरा जम्मू-कश्मीर राज्य नहीं है, जैसा कि मीडिया दिखाने का प्रयास करती है। राज्य में राष्ट्रवादी शक्तियां अलगाववादी शक्तियों से ज्यादा प्रखर और बहुत अधिक संख्या में हैं। यदि इस घटना का ही उदाहरण लें तो मीडिया ने यह तो दिखा दिया कि श्रीनगर के एक चौक पर पाकिस्तान का झंडा फहराया गया और भारत विरोधी नारे लगाए गए। लेकिन उसके बाद पूरे राज्य में कई दिनों तक अलगाववादियों के पुतले और पाकिस्तान के झंडे जलाए और भारत माता की जय के नारे लगाए गए, इसका उल्लेख कहीं भी नहीं किया गया। केवल कुछ आतंकियों द्वारा पाकिस्तान का झंडा फहराने की घटना यदि पूरे दिन चैनलों में चल सकती है, तो जब उसी राज्य में सैकड़ों स्थानों पर पाकिस्तान का झंडा जलाया गया तो उस दृश्य को भी कुछ स्थान तो मिलना ही चाहिए था।

जम्मू-कश्मीर के उच्च न्यायालय के जम्मू बार एसोसिएशन द्वारा इस घटना के विरोध में एक दिन काम बंद किया गया।

उसके अलावा क्रान्ति दल ने इंदिरा चौक पर अलगाववादियों का पुतला व पाकिस्तान का झंडा जलाया, शिव सेना द्वारा कठुआ में प्रदर्शन किया गया, जम्मू विश्वविद्यालय के छात्रों द्वारा विश्वविद्यालय के सामने मसर्रत आलम का पुतला जलाया गया, पुंछ यूथ फोरम ने पुंछ जिला के मुख्य सिटी चौक पर विरोध प्रदर्शन कर पाकिस्तान व अलगाववादियों के पुतले जलाए, विश्व हिन्दू परिषद् एवं बजरंग दल द्वारा राजौरी के पंजा चौक पर पाकिस्तान व अलगाववादियों का पुतला दहन किया गया, जम्मू प्रेस क्लब के सामने अखिल भारतीय कश्मीरी यूथ समाज ने प्रदर्शन किया, जगती शरणार्थी एवं सोन कश्मीर फ्रंट द्वारा 19 अप्रैल को जगती नगरोटा में प्रदर्शन किया व डोगरा फ्रंट, जम्मू वेस्ट असेंबली मूमेंट, श्री राम सेना, पनुन कश्मीर जैसे अन्य कई संगठनों ने राज्य में इस राष्ट्रविरोधि घटना का उग्र स्वर में न केवल विरोध किया गया, बल्कि श्रीनगर की उस राष्ट्रविरोधी सभा से अधिक संख्या में एकत्रित होकर राज्य की राष्ट्रवादी शक्तियों ने इसका प्रत्युत्तर दिया।

लेकिन दुर्भाग्यवश राष्ट्रीय मीडिया ने राज्य को इस परिप्रेक्ष्य में दिखाना उचित नहीं समझा।

जिन अलगाववादियों का राज्य की अधिकांश जनता अनुसरण करना तो दूर, उनसे घृणा करती है, उन्हें राज्य के प्रतिनिधि के रूप में दिखाने की मंशा पत्रकारिता के किन मूल्यों के अंतर्गत की जाती है, उनकी खोज की जानी चाहिए।

—चंदन आनंद

चीन से हमें 20 अरब डालर के निवेश का वादा मिला था, अमेरिका से दो अरब डालर के निवेश का। मोदी की इन दोनों देशों की यात्रा के समय भारतीय मीडिया ने आसमान सिर पर उठा लिया था, जबकि संयुत अरब अमीरात से 75 अरब डालर के निवेश का उपहार मिला, लेकिन भारतीय मीडिया ने इस उपलधि के जिक्र में खासी कंजूसी बरती। प्रश्न यह है कि या भारतीय मीडिया के चिंतन के कैनवस पर केवल चीन, अमेरिका और यूरोप ही महत्वपूर्ण हैं...?

1

प्रथम दृष्टया देखने को मिला है कि अकेले यूएई ने अमेरिका, चीन और जापान तीनों देशों के बराबर निवेश की मंशा जाहिर की है। लिहाजा यूएई द्वारा भारत में भारी निवेश की खबर को तीनों देशों से ज्यादा तवज्जो मिलनी चाहिए थी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इसका सबसे बड़ा कारण यही माना जाएगा कि भारतीय मीडिया एक अवधारणा बना ली है कि इन गिने-चुने विकसित देशों की दया दृष्टि से ही भारत की आर्थिक दशा बदल पाएगी, लेकिन यूएई के भारत में भारी भरकम निवेश यह अवधारणा ध्वस्त होती है। बेहतर होगा कि भारतीय मीडिया भी बदले समय के साथ अपनी इस मानसिकता में बदलाव कर ले।

काकू चौहान, यूरो चीफ, अमर उजाला

2.

भारतीय मीडिया द्वारा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की यूएई की यात्रा के दौरान भारी निवेश की प्रस्तुति इस हल्के-फुल्के अंदाज में की गई, उससे प्रभावशाली देशों की लॉबिंग के दर्शन होते हैं। यूएई के भारी निवेश की खबरें यदि मीडिया में निष्पक्ष ढंग से दिखाई जातीं, तो यकीनन इससे यूएई सरीखे छोटे देशों के प्रति प्रभावशाली और सकारात्मक संदेश जाता। इसके आगे अमेरिका सरीखे शक्तिशाली मुल्क हल्के पड़ते।

नवीन, सिटी रिपोर्टर, पंजाब केसरी

3.

अमेरिका और यूरोपीय देशों का सूचना तंत्र काफी मजबूत है। अत: जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी इन देशों की यात्रा पर थे, तो उनके हर समझौते को एक प्रभावशाली ढंग से प्रचारित किया गया था। भारतीय मीडिया ने भी इन समाचारों को प्रमुखता से दिखाया। इसकी तुलना में यूएई सरीखे देशों का सूचना तंत्र इतना मजबूत नहीं है कि जरूरी खबरों को समूचे विश्व के समक्ष मजबूती से रख सके। इस कारण यूएई के भारत में बड़े निवेश की खबर को एक सामान्य घटनाक्रम की तरह दिखाया गया।

सुमित महाजन, पत्रकारिता छात्र

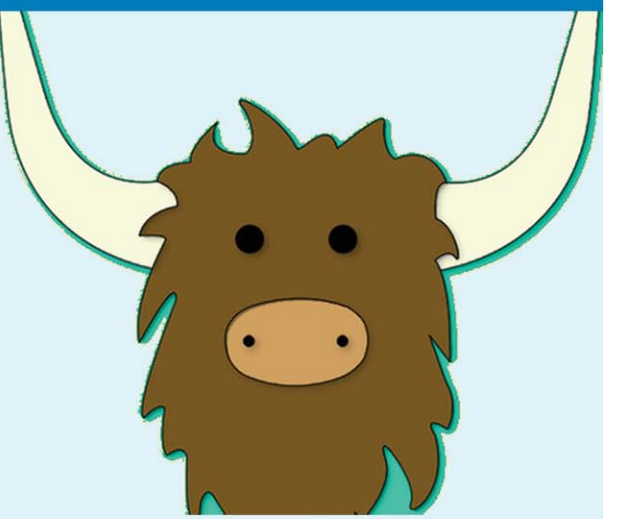

4.

विश्व मानचित्र पर अमेरिका, चीन और विकसित यूरोपीय देश एक धाक जमा चुके हैं। ऐसे में मीडिया में एक अवधारणा बना ली है कि इन देशों के साथ भारत के अच्छे संबंध दर्शाकर भारत के बढ़ते प्रभाव का प्रदर्शन समूचे विश्व के समक्ष किया जा सकता है। इसी दिखावे की राह पर बढ़ते हुए मोदी की अमेरिका, चीन या जापान की यात्रा और वहां हुए समझौतों का अंधाधुंध प्रचार करता है, लेकिन यूरोप के साथ निवेश को लेकर पूरे करार की अहम खबर के साथ न्याय करना उचित नहीं समझता। भारतीय मीडिया को इस तरह के पूर्वाग्रहों से बचना होगा।

नागेश ठाकुर, सब-एडिटर, हिमाचल दिस वीक

5.

मीडिया का एक वर्ग हमेशा मोदी के विरोध में पत्रकारिता करता रहा है। यूएई के निवेश से भारत में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की जो साख बढ़ती, वे इसे हरगिज पसंद न आती। लिहाजा उसने इस पूरी खबर को दबाने का प्रयास किया है, जो कि पत्रकारिता के सिद्धांतों के खिलाफ है। मीडिया के इस वर्ग को पक्षपातपूर्ण रवैया छोड़ना होगा।

मनोज कुमार, विधि छात्र